मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 103 ● वर्ष 11, अंक 10 ● दिसम्बर 2021 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो? 11

धनी किसान-कुलक आन्दोलन के नेतृत्व से कुछ ज़रूरी सवाल 9

'आदिविद्रोही' : आज़ादी और स्वाभिमान के संघर्ष की गौरव-गाथा 14

खेती क़ानूनों पर रस्साकशी के पहले दौर में खेतिहर पूँजीपति वर्ग की औद्योगिक-वित्तीय बड़े पूँजीपति वर्ग पर जीत और मज़दूर वर्ग के लिए इसके मायने

सम्पादक मण्डल

पिछले 23 नवम्बर को मोदी सरकार ने धनी किसान-कुलक आन्दोलन के क़रीब 1 साल बाद धनी किसानों की यूनियनों के संयुक्त मोर्चे की माँगें मानते हुए तीनों खेती क़ानून वापस ले लिये। 29 नवम्बर को संसद में इन तीनों क़ानूनों को रद्द करने वाला बिल पारित हो गया। लेकिन कुलक आन्दोलन अब इस माँग पर अड़ गया है कि उसे लाभकारी मूल्य, यानी एमएसपी की क़ानूनी गारण्टी दी जाये। हम पहले भी 'मज़दूर बिगुल' के पन्नों पर विस्तार से लिखते रहे हैं कि एमएसपी की माँग एक प्रतिक्रियावादी और जनविरोधी माँग है, जो कि सरकारी इजारेदारी के मातहत तय इजारेदार क़ीमत द्वारा खेतिहर पूँजीपति वर्ग को एक बेशी मुनाफ़ा देती है, खाद्यान्न की क़ीमतों को भी बढ़ाती है और वहीं सार्वजनिक वितरण प्रणाली को भी बर्बाद करती है। यह एक इजारेदार लगान है जो कि खेतिहर पूँजीपति वर्ग द्वारा वसूला जाता रहा है और यह मज़दूर वर्ग की औसत वास्तविक मज़दूरी से कटौती करके धनी किसानों-कुलकों की समृद्धि बढ़ाता है। साथ ही, यह औद्योगिक पूँजीपति वर्ग को भी नुक़सान पहुँचाता है क्योंकि एमएसपी के कारण खाद्यान्न के महँगे होने के कारण मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा होता है, जो कि औद्योगिक पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की दर को कम करने की सम्भावना को पैदा करता है। इसलिए औद्योगिक पूँजीपति वर्ग अपनी अलग वजहों से एमएसपी का विरोध करता है, जबकि मज़दूर वर्ग अपनी अलग वजहों से एमएसपी का विरोध करता है। ज़ाहिर है कि इसका यह अर्थ कोई मूर्ख नरोदवादी और कुलकों का पुछल्ला ही निकाल सकता है कि मज़दूर वर्ग अपनी स्वतंत्र राजनीतिक अवस्थिति से एमएसपी का विरोध करके अम्बानी-अडानी या मोदी सरकार का समर्थन कर रहा है। यह उसी प्रकार का तर्क है कि जिसके अनुसार कोई भी मोदी-विरोधी देशीद्रोही क़रार दे दिया जाता है! ठीक उसी प्रकार से एमएसपी का अपनी मज़दूर-वर्गीय ज़मीन से विरोध करने वालों को भी कुलकवादी ताक़तें मोदी-समर्थक क़रार देने की कोशिश करती हैं। यानी, जो कुलकों की ट्रॉली के पीछे न घिसटे वह मोदी-समर्थक! यह तर्क-पद्धति ही मूर्खतापूर्ण है। मज़दूर वर्ग अपने स्वतंत्र कारणों से एमएसपी का विरोध करता है और आगे भी करता रहेगा और बड़ी इजारेदार पूँजी का विरोध भी वह अपनी स्वतंत्र राजनीतिक अवस्थिति से करता है। साथ ही, वह बड़ी पूँजी के विरोध में छोटे और मँझोले पूँजीपति वर्ग से मोर्चा नहीं बना लेता है और वह क्रान्तिकारी सर्वहारा अवस्थिति से समूचे पूँजीपति वर्ग का विरोध करता है।

बहरहाल, मौजूदा कशमकश पर आते हैं जो कि एमएसपी के सवाल पर और इसी वजह से तीन खेती क़ानूनों के सवाल पर खेतिहर पूँजीपति वर्ग, यानी धनी किसान व कुलकों, तथा वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपति वर्ग के बीच जारी थी। इन तीन खेती क़ानूनों को वापस लेने के लिए धनी किसान व कुलक

(पेज 8 पर जारी)

फ़ासिस्टों के "रामराज्य" में स्त्रियों के विरुद्ध बढ़ते बर्बर अपराध

एकजुट और निरन्तर संघर्ष ही रास्ता है!

पिछले दिनों देश के गृहमंत्री अमित शाह उत्तर प्रदेश में क़ानून-व्यवस्था की तारीफ़ में बोल गये कि यहाँ आधी रात को कोई महिला गहने पहनकर निकल सकती है और उसे कुछ नहीं होगा! लेकिन कोई अन्धभक्त भी शायद ही इस जुमले को सही मानेगा। सच तो यह है कि उत्तर प्रदेश में हत्याओं और बर्बर यौन हिंसा सहित तमाम तरह के अपराध बेरोकटोक जारी हैं। केवल पिछले चन्द हफ़्तों के भीतर उत्तर प्रदेश में और देश के कई राज्यों में स्त्रियों के विरुद्ध बर्बर अपराधों की जैसे बाढ़ आ गयी, मगर गृहमंत्री से लेकर संसद में ड्रामे करने वाली भाजपा की महिला सांसद शान्त हैं।

ऐसी घटनाएँ हर नागरिक के लिए चिन्ता और ग़ुस्से का सबब है, मगर यह तो होना ही था। **जब सत्ता में ऐसे लोग बैठे हों जिनकी सोच स्त्रियों को पैरों की जूती समझने की हो, जिनकी पार्टी और संसदीय दल बलात्कार के आरोपियों से भरे हुए हों, जिनके मंत्री और विधायक एक बच्ची के बलात्कारियों के पक्ष में तिरंगा लेकर जुलूस निकालते हों, जिनके मुख्यमंत्री के मंच से मुस्लिम महिलाओं को क़ब्र से निकालकर बलात्कार करने का आह्वान किया जाता हो, हर बलात्कारी बाबा जिनके नेताओं के अगल-बग़ल दिखायी देता हो, और जिनकी विचारधारा में बलात्कार को विरोधी पर विजय के हथियार के रूप में महिमामण्डित किया जाता हो, तो आप स्त्रियों के लिए बराबरी, सम्मान और न्याय की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?**

देश में लगातार बढ़ते स्त्री विरोधी घिनौने अपराधों से ज़ाहिर है कि 16 दिसम्बर 2012 के बाद हुए आन्दोलनों और देशव्यापी ग़ुस्से की लहर के बावजूद ज़मीनी हालात में कोई अन्तर नहीं आया है। बल्कि 2014 में "बहुत हुआ स्त्री पर वार" के नारे के साथ सत्ता में आने वाली भाजपा के शासन में हालात बद से बदतर होते गये हैं।

ऐसे में, बलात्कारियों को सख़्त से सख़्त सज़ा दिलाने और पीड़ितों को इन्साफ़ दिलाने के लिए सड़कों पर उतरने के साथ ही हमें इस सवाल पर भी सोचना ही होगा कि स्त्रियों और बच्चियों पर बर्बर हमलों और बलात्कार की घटनाएँ इस क़दर क्यों बढ़ती जा रही हैं और इनके लिए कौन-सी ताक़तें ज़िम्मेदार हैं! हमें सोचना ही होगा कि क्या बलात्कार या फिर कोई भी स्त्री-विरोधी अपराध महज़ क़ानून-व्यवस्था या सुरक्षा का मसला है? स्त्रियों के ख़िलाफ़ इतनी बड़ी तादाद में अपराध होते ही क्यों हैं? बात-बात पर महान भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाले हमारे समाज में स्त्रियों के विरुद्ध इतने ग़लीज़ क़िस्म की नफ़रत पैदा कहाँ से होती है?

(पेज 3 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

चण्डीगढ़ में मज़दूरों के बीच सघन प्रचार अभियान

पिछले 7 से 11 नवम्बर के दरमियान चण्डीगढ़ में मज़दूरों के विभिन्न रिहायशी इलाक़ों में 'मज़दूर बिगुल' का प्रचार अभियान चलाया गया। इस दौरान रिहायशी इलाक़ों और चण्डीगढ़ के मज़दूरों की कार्यस्थितियों की जाँच पड़ताल भी की गयी। प्रचार टीम ने नुक्कड़ सभाओं, लेबर चौक पर सभा, रास्तों पर हाँक लगाकर तथा व्यक्तिगत बातचीत के माध्यम से मज़दूर साथियों को अख़बार से परिचित कराया। मज़दूरों ने बिगुल अख़बार के प्रति ख़ासी दिलचस्पी दिखायी। इन 4-5 दिनों के दौरान ही सैकड़ों अख़बारों का वितरण किया गया।

बिगुल मज़दूर दस्ता, चण्डीगढ़ के शुभम रौतेला ने बताया कि चण्डीगढ़ वैसे तो अपनी सुनियोजित बसावट और ख़ूबसूरती के लिए काफ़ी मशहूर है और शहर में घूमते-फिरते हुए आपको यह नहीं पता चलेगा कि इस शहर को चमकाने और चलाने वाली आबादी किन स्थितियों में रहती है। लेकिन जैसे ही हम हल्लोमाजरा, राम दरबार कॉलोनी, विकासनगर कॉलोनी, धनास, डड्डू माजरा, मनी माजरा इत्यादि इलाक़ों में जायेंगे तो हमें साफ़ पता चल जायेगा कि चण्डीगढ़ की लाखों-लाख मेहनतकश आबादी किन हालात में रहती है। ये श्रमिक चण्डीगढ़ के औद्योगिक इलाक़ों, वर्कशॉपों, भवन निर्माण, दुकानों-शोरूमों में और घरेलू कामगार के तौर पर काम करते हैं। ठेका, दिहाड़ी, मासिक वेतन व पीसरेट पर कार्यरत अधिकतर मज़दूरों को न तो न्यूनतम वेतन ही नसीब होता है और न ही इन्हें आठ घण्टे कार्यदिवस, ईएसआई, ईपीएफ़ और ओवरटाइम का डबल रेट से भुगतान ही मिलता है।

चण्डीगढ़ में अकुशल श्रमिक का सरकार द्वारा तय न्यूनतम वेतन 413 दैनिक और 10,747 रुपये मासिक है। इसी तरह कुशल श्रमिक का 455 दैनिक और 11,822 रुपये मासिक है। हालाँकि यह वेतन जीने की बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने के लिए भी अपर्याप्त है लेकिन ज़्यादातर मज़दूरों को तो इतना भी नहीं मिलता है।

देश के मज़दूर वर्ग से चण्डीगढ़ के मज़दूरों के हालात कुछ अलग नहीं हैं। यहाँ भी श्रमिकों में इस शोषणकारी व्यवस्था के ख़िलाफ़ रोष तो है लेकिन ज़्यादातर मज़दूर असंगठित हैं। मालिक, प्रशासन और पूरी व्यवस्था के गठजोड़ के सामने मज़दूर ख़ुद को असहाय पाते हैं। चण्डीगढ़ के मज़दूर सही राजनीतिक लाइन पर संगठित होकर जुझारू संघर्षों के ज़रिए ही अपने हक़-अधिकार हासिल कर सकते हैं। मेहनतकश जनता के शोषण पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था को ढहाकर मानवकेन्द्रित व्यवस्था के निर्माण में अगुआ भूमिका भी मज़दूर वर्ग की होगी। आने वाले दिनों में निश्चय ही चण्डीगढ़ की श्रमिक आबादी वर्गसचेत व संगठित होगी और पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा लादी गयी नियति को धता बताकर देश के मज़दूरों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ेगी। लेकिन इसके लिए मज़दूरों के बीच राजनीतिक चेतना के प्रचार-प्रसार के लिए सतत् काम करने और उन्हें जुझारू यूनियनों और क्रान्तिकारी संगठनों में संगठित करने के लिए जीजान से काम करने की ज़रूरत है।

– बिगुल संवाददाता

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिए लोगों तक पहुँचें?

तो क़लम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

नोएडा-ग्रेटर नोएडा औद्योगिक क्षेत्र : लगातार बढ़ रहे शोषण के ख़िलाफ़ जारी है मज़दूरों का असंगठित प्रतिरोध

– सत्येन्द्र

दिल्ली के ओखला औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार के तौर पर नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (न्यू ओखला इण्डस्ट्रियल डेवलपमेण्ट अथॉरिटी) की स्थापना की गयी। आपातकाल के दौर में 17 अप्रैल 1976 को नोएडा अस्तित्व में आया। प्रारम्भ में 12 सेक्टर बसाये गये जिसमें सेक्टर 1 से 10 औद्योगिक थे और 11 मिश्रित तथा 12 आवासीय सेक्टर था। दूसरे दौर 1985 में फ़ेज़-2 को औद्योगिक क्षेत्र के रूप में तैयार किया गया जो भारत का पहला विशेष आर्थिक क्षेत्र (NSEZ) था।

दिल्ली से नज़दीक होने के कारण अस्तित्व में आने के बाद से ही नोएडा में औद्योगिक क्षेत्रों का तेज़ी से विकास हुआ। देशी-विदेशी कम्पनियाँ यहाँ पर अपनी उत्पादन इकाइयों का तेज़ी से विस्तार करने लगीं। ग़ैर-परम्परागत औद्योगिक इकाइयों के साथ यहाँ पर बड़ी संख्या में आईटी कम्पनियाँ हैं। साथ ही नोएडा आईटी सेवाओं को आउटसोर्स करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का एक प्रमुख केन्द्र है।

नोएडा-ग्रेटर नोएडा औद्योगिक क्षेत्र में एक अनुमान के मुताबिक़ क़रीब 6 लाख प्रवासी मज़दूर काम करते हैं। नोएडा एण्टरप्रेनयोर्स एसोसिएशन के मुताबिक़ नोएडा-ग्रेटर नोएडा औद्योगिक क्षेत्र में 11,000 पंजीकृत इकाइयाँ हैं जिनमें 3,000 इलेक्ट्रॉनिक्स वस्तुओं के निर्माण में लगी हुई हैं। ग़ैर-पंजीकृत इकाइयों को भी जोड़ दें तो ज़िले में 20 हज़ार औद्योगिक उत्पादन केन्द्र हैं जिनमें से छोटे और मध्यम उत्पादन केन्द्रों की संख्या 16 हज़ार है।

6 लाख प्रवासी मज़दूरों के अलावा बड़ी संख्या में स्थानीय मेहनतकश आबादी और आसपास के ज़िलों से भी लोग काम की तलाश में नोएडा-ग्रेटर नोएडा पर निर्भर रहते हैं। हाल के दिनों में विशेष तौर पर लॉकडाऊन के बाद से यहाँ पर मज़दूरों के लिए काम के हालात बेहद मुश्किल हो गये हैं। लॉकडाउन से पहले की तुलना में मज़दूरों के काम के घण्टे अधिक हो गये हैं, रोज़गार की असुरक्षा बढ़ी है, वेतन कम हो गया है, साप्ताहिक छुट्टी नहीं मिल रही है और बेरोज़गारी का आलम यह है कि कई जगहों पर हेल्पर के काम के लिए 30 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों को नहीं रखा जा रहा है।

लॉकडाउन के दौरान बड़ी संख्या में यहाँ के मज़दूरों को मालिकों ने पिछला हिसाब नहीं दिया था। लौटकर आने के बाद भी मुश्किल से 10-20 फ़ीसदी मज़दूरों को ही उनका बकाया मिल सका बाक़ी मालिक और उनके चमचों ने ग़बन कर लिया। लॉकडाउन से पहले फ़ैक्टरियों में काम करने वालों में बहुत-से मज़दूर छँटनी के बाद दिहाड़ी मज़दूर बन गये हैं और महीने में बमुश्किल 15-20 दिन काम पा रहे हैं।

उत्तर प्रदेश के दूसरे ज़िलों, बिहार सहित अन्य जगहों से अच्छी "नौकरी" की तलाश में आने वाले नौजवान महीनों भटकने के बाद मजबूरी में सिक्योरिटी गार्ड की नौकरी कर रहे हैं। यहाँ भी रात में लगातार 12-12 घण्टे काम करने के बाद भी उन्हें कोई साप्ताहिक अवकाश नहीं मिलता है और वेतन के नाम पर 12-13 हज़ार रुपये मिल रहे हैं।

नोएडा-ग्रेटर नोएडा अथॉरिटी के मातहत काम करने वाले सफ़ाईकर्मियों की हालत भी ख़राब है नौकरी पर रखने से पहले ठेकेदार उनसे घूस के तौर पर 70 हज़ार से 1 लाख रुपये तक ले रहे हैं। फिर भी उनकी नौकरी का कोई ठिकाना नहीं है। मुख्य नियोक्ता होने के बावजूद नोएडा विकास प्राधिकरण ने अपनी ज़िम्मेदारियों से पल्ला झाड़ लिया है।

ऐसा नहीं है कि इन परिस्थितियों को मज़दूरों ने अपना नसीब मानकर स्वीकार कर लिया है और वह किसी तरह का विरोध नहीं करते हैं। बल्कि हालात इसके विपरीत हैं फ़ैक्टरियों और कार्यस्थलों पर अपने ख़िलाफ़ हो रही ज़्यादतियों को लेकर मज़दूरों का ग़ुस्सा अक्सर फूटता रहता है। लेकिन संगठित क्रान्तिकारी ताक़त के अभाव में वे पूँजीपतियों से लम्बे समय तक लड़ नहीं पाते और हालात से समझौता कर लेते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में अलग-अलग समय पर मज़दूरों का ग़ुस्सा फूटता रहा है। काम करने के मुश्किल हालात और बढ़ते शोषण के ख़िलाफ़ मज़दूरों की नाराज़गी आये दिन सड़कों पर दिख जाती है।

हाल के वर्षों में मज़दूरों के कुछ प्रदर्शनों पर एक नज़र

• सेक्टर-63 स्थित कपड़ा एक्सपोर्ट करने वाली ओरिएण्ट क्राफ़्ट लिमिटेड कम्पनी में 2 अक्टूबर 2016 को कर्मचारियों और प्रबन्धन में विवाद हो गया। छँटनी का विरोध करने पर साथी से मारपीट से नाराज़ 3 हज़ार मज़दूरों ने विरोध प्रदर्शन किया। जीएम की शिकायत पर पुलिस ने 50 मज़दूरों को नामज़द करते हुए 200 अज्ञात मज़दूरों के ख़िलाफ़ कई गम्भीर धाराओं के तहत केस दर्ज कर 23 लोगों को गिरफ़्तार कर लिया।

• हाईपैड टेक्नोलॉजी इण्डिया नाम की कम्पनी में 29 नवम्बर 2018 को नौकरी से निकाले जाने से नाराज़ 200 मज़दूरों ने प्रदर्शन किया। कम्पनी कई महीनों से लगातार मज़दूरों को बिना किसी नोटिस के निकाल रही थी जिससे मज़दूर नाराज़ थे। 200 मज़दूरों को कम्पनी ने फिर 15 दिनों के लिए छुट्टी पर भेज दिया। मज़दूरों ने अन्दर जाने की कोशिश की तो बाउंसरों ने उनके साथ मारपीट की। पुलिस ने उल्टे 5 नामज़द सहित 200 अज्ञात मज़दूरों के ख़िलाफ़ केस दर्ज कर दिया।

• 17 नवम्बर 2019 को ग्रेटर नोएडा के एलजी इलेक्ट्रानिक्स कम्पनी में भी लगभग 850 मज़दूर महीनों तक धरने पर बैठे रहे। कम्पनी मज़दूरों को यूनियन नहीं बनाने दे रही थी। लम्बे समय तक चलने वाले इस संघर्ष में भी मज़दूरों को अन्त में झुककर समझौता ही करना पड़ा।

• 1 जुलाई 2020 को फ़ेस-3 थाना क्षेत्र के सेक्टर 63 में ओरिएण्ट क्राफ़्ट कम्पनी के 300 मज़दूरों ने 3 महीने से वेतन नहीं मिलने से नाराज़ होकर प्रदर्शन शुरू कर दिया।

• 11 अगस्त थाना ईकोटेक-3 क्षेत्र में एटीएस बिल्डर की निर्माणाधीन साइट पर करण्ट लगने से एक मज़दूर की मौत के बाद सड़क पर प्रदर्शन कर रहे 60 मज़दूरों के ख़िलाफ़ पुलिस ने मुक़दमा दर्ज कर लिया। ये मज़दूर मृतक के परिजनों को उचित मुआवज़ा देने की माँग कर रहे थे।

• लॉकडाउन के दौरान ही गौतमबुद्ध यूनिवर्सिटी ने 280 सफ़ाईकर्मियों को बिना किसी नोटिस के बाहर निकाल दिया था। क़रीब 4 महीनों तक यूनिवर्सिटी के गेट पर प्रदर्शन करने के बाद भी मज़दूरों को कुछ हासिल नहीं हुआ।

• नोएडा अथॉरिटी के मातहत काम करने वाले 3,500 सफ़ाई मज़दूरों को लगातार शोषण का शिकार होना पड़ता है। अथॉरिटी ने भी ठेकेदारों को खुली छूट दे रखी है। मज़दूरों को कभी भी समय पर मानदेय नहीं मिलता और लगातार वे प्रदर्शन करते रहते हैं।

इस समय लॉकडाउन की वजह से मज़दूरों को काम नहीं मिल रहा था। वे अपने बकाया वेतन के भुगतान के लिए बार-बार कम्पनी के पास जाते थे और हर बार उन्हें अगली तारीख़ देकर वापस भेज दिया जाता था। जब मज़दूर इससे तंग आये तो उन्होंने प्रदर्शन करने का रास्ता चुना। लेकिन लाठी खाने और मुक़दमा दर्ज हो जाने के बाद भी सैकड़ों को वेतन नहीं मिला।

सीवर की सफ़ाई के दौरान भी आये दिन नोएड-ग्रेटर नोएडा में हादसे होते रहते हैं जिनमें मज़दूरों की मौत हो जाती है। ठेकेदारों, मालिकों द्वारा बकाया वेतन नहीं देने या मामूली ग़लती पर ज़्यादा पैसा काट लेने की घटनाएँ तो आम हैं। बिना नोटिस के काम से निकाले जाने और सुरक्षा उपकरणों के अभाव में मज़दूरों के साथ दुर्घटनाओं की संख्या में तेज़ी से इज़ाफ़ा हुआ है। कारण कि रोज़गार की सम्भावनाओं में तेज़ी से गिरावट हुई है।

नोएडा-ग्रेटर नोएडा औद्योगिक क्षेत्र में पिछले एक दशक की घटनाओं पर नज़र डालें तो स्पष्ट नज़र आता है कि पहले जो आन्दोलन होते थे वे संगठित होते थे जिसके कारण मज़दूरों का जुझारूपन दिखता था। लेकिन श्रम क़ानूनों के ढीला होने और संशोधनवादी पार्टियों की ट्रेड यूनियनों का समझौतापरस्त और दलाल चरित्र मज़दूरों के सामने उजागर होने के साथ-साथ मज़दूरों के संगठित आन्दोलनों में कमी आयी है।

समय-समय पर मज़दूरों का ग़ुस्सा फूट पड़ता है। ज़्यादातर यह स्वत: स्फूर्त होता है। योजनाबद्ध संगठित ताक़त के अभाव में ज़्यादातर ऐसे विरोध प्रदर्शनों का अन्त मज़दूरों को निराशा और पस्तहिम्मती की ओर धकेलता है। पूँजीपति और पुलिस प्रशासन गठजोड़ के साझा हमलों और दमन की कार्रवाइयों का जबाब देने के लिए मज़दूरों का अपना क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन नेतृत्व होना चाहिए।

स्त्रियों के विरुद्ध बढ़ते बर्बर अपराध – एकजुट और निरन्तर संघर्ष ही रास्ता है!

(पेज 1 से आगे)

इसका जवाब कठिन नहीं है। एक ओर जब देश के तमाम इन्साफ़पसन्द और संवेदनशील युवा, स्त्रियाँ और नागरिक ऐसे अपराधों के विरुद्ध सड़कों पर उतरते हैं, तभी रूढ़ियों, कूपमण्डूकता, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिक कट्टरपन्थ और कठमुल्लापन के ठेकेदार पूरी नंगई और बेशरमी के साथ औरतों के बारे में अपनी घृणास्पद सोच की उल्टी करना शुरू कर देते हैं। और देश की तमाम पूँजीवादी पार्टियों के नेता-मंत्री से लेकर नौकरशाह और पुलिस अफ़सर तक इनके सुर में सुर मिलाना शुरू कर देते हैं। जिस देश में बलात्कार के मामले पर प्राथमिकी दर्ज कराने गयी लड़की के साथ पुलिसवाले दोबारा सामूहिक बलात्कार करते हैं, वहाँ आप कैसे इन्साफ़ की उम्मीद कर सकते हैं? जहाँ गिरफ़्तार राजनीतिक महिला कार्यकर्ताओं को यौन यातना देने वाले पुलिसवाले को सरकार वीरता पुरस्कार से सम्मानित करती है, वहाँ किस तरह का न्याय हो सकता है?

स्त्रियों पर हमला करने वाले आदमख़ोर भेड़ियों की तरह बेख़ौफ़ घूमते रहते हैं। हिफ़ाज़त के लिए बनी संस्थाएँ ही स्त्रियों की सबसे बड़ी दुश्मन बन चुकी हैं। बलात्कार के 74 प्रतिशत आरोपी बेदाग़ छूट जाते हैं। अख़बारों और टीवी चैनलों में बलात्कार की ख़बरें चटख़ारेदार माल की तरह परोसी जाती हैं। बलात्कार की हर चर्चित घटना के बाद सरकार से लेकर सभी विपक्षी चुनावी पार्टियाँ घड़ियाली आँसू बहाती हैं। लेकिन हर चुनावी पार्टी में बलात्कार, भ्रष्टाचार, हत्या आदि के आरोपी भरे हुए हैं। **एसोसिएशन फ़ॉर डेमोक्रेटिक रिफ़ॉर्म्स की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान लोकसभा में क़रीब 43 प्रतिशत सांसदों के विरुद्ध स्त्री-विरोधी अपराधों सहित तमाम तरह के आपराधिक आरोप हैं। इनमें सबसे बड़ी संख्या भाजपा के सांसदों की है जिनमें से 30 प्रतिशत के विरुद्ध बलात्कार, हत्या, अपहरण जैसे गम्भीर स्त्री-विरोधी अपराधों के आरोप हैं। भाजपा ही वह पार्टी है जिसके नेता खुलकर बलात्कारियों का बचाव करते हैं या उनके पक्ष में सड़कों पर उतर आते हैं!**

पिछले दो दशकों से जारी आर्थिक नीतियों ने 'खाओ-पियो ऐश-करो' की संस्कृति में लिप्त एक नवधनाढ्य वर्ग पैदा किया है जिसे लगता है पैसे के बूते पर वह सबकुछ ख़रीद सकता है। पूँजीवादी लोभ-लालच और हिंस्र भोगवाद की संस्कृति ने स्त्रियों को एक 'माल' बना डाला है, और पैसे के नशे में अन्धे इस वर्ग के भीतर उसी 'माल' के उपभोग की उन्मादी हवस भर दी है। इन्हीं लुटेरी नीतियों ने समाज के हाशियों पर पलता हुआ एक आवारा, लम्पट, पतित वर्ग भी पैदा किया है जो पूँजीवादी अमानवीकरण की सभी हदों को पार कर चुका है। इस सबको निरन्तर खाद-पानी देती है हमारे समाज के पोर-पोर में समायी पितृसत्तात्मक मानसिकता, जो स्त्रियों को भोग की वस्तु और बच्चा पैदा करने का यंत्र मानती है, और हर वक़्त, हर पल स्त्री-विरोधी मानसिकता को जन्म देती है।

इसलिए सख़्त क़ानून बनाने और कुछ प्रशासनिक क़दम उठाने जैसी पैबन्दसाज़ियों से समस्या हल नहीं होने वाली। इन तात्कालिक माँगों के साथ ही हमें स्त्री-विरोधी नफ़रत और मानसिक बीमारियों को पैदा करने वाली पूँजीवादी संस्कृति के विरुद्ध भी लड़ना होगा। उस पूरे सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक ढाँचे को ही उखाड़ फेंकने की लम्बी लड़ाई शुरू करनी होगी, जिसमें इन्सान को भी एक माल बना दिया गया है, और औरत को महज़ जिस्म में तब्दील कर दिया गया है जिसे कोई भी नोच-खसोट सकता है! स्त्रियों को अपनी सुरक्षा और सम्मान के लिए ख़ुद लड़ना भी सीखना होगा।

सिर्फ़ अपना ग़ुस्सा, अपनी नफ़रत और अपनी भड़ास निकाल लेने से कुछ नहीं होगा। यह सिलसिला यहीं रुक नहीं जाना चाहिए। स्त्री की ग़ुलामी के सभी रूपों, स्त्री उत्पीड़न के सभी रूपों के ख़िलाफ़ और उन्हें पैदा करने वाले सामाजिक ढाँचे को तोड़ डालने के लिए अपने संघर्ष को हमें संगठित करना होगा। हर घटना के बाद होने वाले क्रोध के विस्फोट को संगठित विरोध के एक निरन्तर प्रवाह में बदलना ही होगा।

भाजपा के "रामराज्यों" में दलितों के ख़िलाफ़ बढ़ती बर्बर हिंसा!

– भारत

फ़ासीवादी भाजपा-शासित राज्यों में हो रहे दलित-विरोधी अपराध बर्बरता की सारी हदें पार करते जा रहे हैं। ऐसा कोई दिन नहीं जाता जब दलितों के साथ सवर्ण जातिवादी गुण्डों द्वारा हिंसा की घटना सामने न आती हो। बीते दिन प्रयागराज के फाफामऊ में दलित परिवार के चार सदस्यों की जातिवादी गुण्डों द्वारा बर्बर हत्या कर दी गयी। देशभर में दलितों के ख़िलाफ़ होने वाली हिंसा के इतिहास में यह घटना एक स्याह पन्ने की तरह दर्ज हो गयी है। मृतकों में फूलचन्द (50), उनकी पत्नी मीनू (45), बेटा शिव (10) और 17 वर्षीय बेटी शामिल हैं। सभी की लाशें घर के अन्दर ख़ून से लथपथ मिलीं। सभी के शरीर पर धारदार हथियार के निशान थे। महिलाएँ नग्न हालत में थीं, जिसके चलते गैंगरेप की आशंका ज़ाहिर की जा रही है। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि मौक़े पर जो हालात थे, आशंका है कि हत्यारों ने पहले बरामदे में सो रहे दम्पति और उनके बेटे को मारा। फिर कमरे में सो रही किशोरी के साथ बलात्कार किया और बाद में उसका भी क़त्ल कर दिया। कपड़े भी अस्त-व्यस्त थे। चारपाई के नीचे बेटे का शव ज़मीन पर पड़ा था। वहीं बरामदे से सटा कमरा है। इसमें बेटी का शव चारपाई पर निर्वस्त्र पड़ा था। माँ-बेटी का शव निर्वस्त्र पाया गया था। मृतक फूलचन्द के एक दूसरे भाई लालचन्द ने 11 लोगों के ख़िलाफ़ नामज़द तहरीर दी है। लालचन्द कहते हैं, "हमारे भाई फूलचन्द ने साल 2019 और 2021 में गाँव के कई दबंगों के ख़िलाफ़ दलित एक्ट में मामला दर्ज कराया था, लेकिन उसमें कार्रवाई नहीं की गयी। हमारी तरफ़ से दो मुक़दमे दर्ज होने के बावजूद थाना पुलिस ने दबंगों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की, जिससे उनका दुस्साहस बढ़ता चला गया। हमारी शिकायतों को गम्भीरता से लिया होता तो शायद इतनी जघन्य वारदात नहीं होती।" इतना सब होने के बाद पुलिस-प्रशासन "हरकत" में आया और आरोपियों पर मामला दर्ज करके कुछ को गिरफ़्तार भी किया है। लेकिन योगी सरकार का ऐसे मसलों पर रवैया देखते हुए इन गिरफ़्तारियों से कोई उम्मीद पालना मूर्खता होगी। योगी सरकार अपनी सरकार और पार्टी के ही मंत्रियों और नेताओं को ऐसे अपराधों में मनमाने तरीक़े से प्राथमिकी वापस लेकर बचाने के कुकर्म नंगई के साथ करती रही है।

सिर्फ़ यही घटना नहीं भाजपा शाषित एक और "रामराज्य" मध्य प्रदेश में बीते 20 नवम्बर को रीवा ज़िले में मज़दूरी के रुपये माँगने पर एक दलित मज़दूर का हाथ धारदार हथियार से जातिवादी गुण्डों ने काट दिया। डोलमऊ गाँव में मज़दूरी के रुपये माँगने पर नियोक्ता गणेश मिश्रा ने अपने साथियों के साथ मिलकर मज़दूर अशोक साकेत (45) के एक हाथ को धारदार हथियार से काट दिया। साकेत ने डोलमऊ गाँव में मिश्रा के लिए एक निर्माणाधीन इमारत में मज़दूरी की थी और मिश्रा उसे मेहनताना देने में कथित रूप से आनाकानी कर रहा था। पुलिस ने तीन लोगों को गिरफ़्तार किया है लेकिन ऐसे दलित-विरोधी अपराधों में भी सज़ा मिलने का रिकॉर्ड नगण्य है।

ये चन्द घटनाएँ ही भाजपा के रामराज्य की हक़ीक़त को बयान कर देती हैं। जहाँ एक तरफ़ अपराध ख़त्म करने के दावे किये जाते हैं, वहीं दूसरी ओर हर रोज़ दलितों के ख़िलाफ़ बर्बर अपराध अंजाम दिये जा रहे हैं। फ़ासीवादी भाजपा सरकार के राज में दलित-विरोधी आपराधिक मानसिकता को पूरी छूट मिली हुई है। हाथरस जैसी घटनाओं में जिस तरह से पुलिस प्रशासन और भाजपा सरकार की पूरी मशीनरी हत्यारों को बचाने के हर सम्भव प्रयास में लगी रही और जिस प्रकार उनके पक्ष में पंचायतें तक आयोजित की गयीं, उससे ही स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी घटनाओं में पीड़ितों को न्याय मिलने की उम्मीद नगण्य है। हाल ही में आयी एनसीआरबी की रिपोर्ट बता रही है कि 2019 की तुलना में 2020 में दलित-विरोधी अपराधों में वृद्धि हुई है और इन में भी उत्तर प्रदेश शीर्ष पर है। दलितों की सुरक्षा के लिए बनाये गये तमाम क़ानून केवल काग़ज़ी हैं। पुलिस प्रशासन से लेकर व्यवस्था की पूरी मशीनरी में ऐसी दलित-विरोधी मानसिकता को प्रश्रय देने वाले भरे पड़े हैं। इस घटना के होते ही तमाम अन्य चुनावबाज़ पार्टियाँ भी मैदान में कूदकर अपनी गोटियाँ लाल करने में लग गयी हैं। जबकि सच्चाई यह है कि इन पार्टियों में भी तमाम दलित-विरोधी अपराधों के अपराधी बैठे हुए हैं। आज यह सबकुछ सामान्य बनता जा रहा है। मनुवाद और ब्राह्मणवाद की पैरोकार भाजपा के सत्ता में आने के बाद जातिवादी दलितों पर हमले तेज़ हुए हैं।

1989 में एससी/एसटी एक्ट के लागू होने के बावजूद देश में औसतन हर 15 मिनट पर एक दलित उत्पीड़न का शिकार होता है; हर घण्टे दलितों के ख़िलाफ़ 5 से ज़्यादा हमले दर्ज होते हैं; हर दिन दो दलितों की हत्या कर दी जाती है। दलित महिलाओं की स्थिति तो और भी भयानक है। प्रतिदिन औसतन 6 दलित स्त्रियाँ बलात्कार का शिकार होती हैं। एनसीआरबी के आँकड़ों के मुताबिक़, वर्ष 2020 के दौरान दलितों के ख़िलाफ़ हुए अपराध या अत्याचार में सबसे अधिक हिस्सा 'मामूली रूप से चोट पहुँचाने' का रहा और ऐसे 16,543 (कुल मामलों के 32.9 प्रतिशत) मामले दर्ज किये गये। इसके बाद अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम के तहत 4,273 मामले (8.5 प्रतिशत) जबकि 'आपराधिक धमकी' के 3,788 (7.5 प्रतिशत)) मामले सामने आये। आँकड़ों से पता चलता है कि अन्य 3,372 मामले बलात्कार के लिए, शील भंग करने के इरादे से महिलाओं पर हमले के 3,373, हत्या के 855 और हत्या के प्रयास के 1,119 मामले दर्ज किये गये। राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में साल 2020 में दलितों के ख़िलाफ़ हुए अपराधों के सबसे अधिक 12,714 मामले (25.2 प्रतिशत) उत्तर प्रदेश से थे। पहली बात तो यह दलित-विरोधी उत्पीड़न के बहुत सारे मामले सामाजिक डर और आर्थिक असुरक्षा के चलते पुलिस-प्रशासन के सामने ही नहीं आ पाते। लेकिन पुलिस और कोर्ट की फ़ाइलों में दर्ज होने के बाद भी न जाने कितने मामलों में न्याय नहीं हो पाता। देशभर में हुए भयंकर दलित-विरोधी काण्ड और उन पर चली न्यायिक प्रक्रिया हमारी न्याय व्यवस्था पर भी बहुत से सवाल खड़े करती है। ख़ुद को दलितों का मसीहा कहने वाली पार्टियाँ भी मेहनतकश दलित आबादी के इन मुद्दों को नहीं उठायेंगी। ये पार्टियाँ सिर्फ़ मूर्ति बनवाने या तोड़े जाने और किसी के बारे में किसी के द्वारा कुछ कह देने जैसे मुद्दों को ही मुखरता से उठाती हैं और दलित-ग़रीब आबादी के असल मुद्दों पर चुप्पी साधे रहती हैं। दलितों की सबसे बड़ी पैरोकारों में से एक मायावती भी अब राम मन्दिर बनवाने की घोषणा कर "रामराज्य" लाने के प्रयत्न कर रही हैं। इन्हीं के पीछे-पीछे चन्द्रशेखर रावण भी अपनी आज़ाद समाज पार्टी बनाकर ख़ुद को दलितों के नायक के तौर पर पेश कर रहे हैं। पर ऐसे मुद्दों पर ये भी पर चुप्पी साधे रहते हैं या फिर सिर्फ़ प्रतीकात्मक कार्रवाई करते हैं।

हमें यह बात समझ लेनी होगी कि बिना समाजवादी क्रान्ति और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के दलित मुक्ति की परियोजना आगे नहीं बढ़ सकती और बिना जाति-व्यवस्था विरोधी व्यापक जनान्दोलनों के क्रान्ति का विचार भी एक ख़याली पुलावभर है। जातिवाद और ब्राह्मणवाद आज विचारधारात्मक और सांस्कृतिक तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था की ही सेवा कर रहा है और इसी के ज़रिए दलित मेहनतकश आबादी के आर्थिक अतिशोषण को भी सम्भव बना रहा है। जातिवाद, साम्प्रदायिकता और तमाम तरह की अस्मितावादी राजनीति आज पूँजीवाद के लिए 'संजीवनी बूटी' के समान है। व्यवस्था के ठेकेदार पूँजीवाद द्वारा परिष्कृत करके अपना ली गयी जाति-व्यवस्था का अपने हितों के लिए ख़ूब इस्तेमाल कर रहे हैं। यही कारण है कि आज़ादी के 74 साल बाद भी जातिवादी दमन-उत्पीड़न घटने के बजाय बढ़ ही रहे हैं। यदि देशव्यापी आँकड़ों पर नज़र दौड़ाएँ तो दलितों का क़रीब 95 प्रतिशत हिस्सा खेतिहर मज़दूर, निर्माण मज़दूर औद्योगिक मज़दूर के तौर पर खट रहा है या फिर सफ़ाई कामगार आदि के तौर पर काम कर रहा है। पहचान और प्रतीकों की राजनीति करने वाले लोग बिरले ही इस मेहनतकश दलित आबादी के मुद्दों को उठाते हैं। इस मज़दूर आबादी के मुद्दे सीधे तौर पर देश की अन्य मेहनतकश आबादी के साथ जुड़ते हैं। शिक्षा-रोज़गार-चिकित्सा-आवास-महँगाई जैसे मुद्दों पर होने वाले संघर्षों में हर जाति की मेहनतकश जनता की साझा भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। दलित-विरोधी उत्पीड़न के मुद्दों के ख़िलाफ़ लड़े जाने वाले संघर्षों को मज़बूती के साथ तभी लड़ा जा सकता है जब हर जाति की व्यापक मेहनतकश जनता को जाति-व्यवस्था के ख़िलाफ़ लामबद्ध किया जायेगा, तभी जाति की समाप्ति की लड़ाई को आगे बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि ग़ैर-दलित मज़दूर आबादी के बीच व्याप्त जातिगत पूर्वाग्रह और श्रेष्ठताबोध के विरुद्ध भी लम्बा और दृढ़ संघर्ष चलाया जाये और यह स्पष्ट किया जाये कि इन विचारों को मान्यता देकर वे अपने दुश्मन, यानी पूँजीपति वर्ग को ही मज़बूत कर रहे हैं।

आज ऐसी हर घटना के ख़िलाफ़ एक तरफ़ तो हमें सड़कों पर उतरकर प्रतिरोध दर्ज कराना ही होगा, साथ ही इस भ्रम से भी मुक्त होना होगा कि इस व्यवस्था के दायरे के भीतर दलित-मुक्ति का कोई रास्ता निकाला जा सकता है। आज वर्गीय एकता क़ायम करके हमें जाति-उन्मूलन के ख़िलाफ़ संघर्ष को तेज़ करने के लिए आगे आना होगा। अखिल भारतीय जाति-विरोधी मंच की ओर से माँग की गयी है कि –

- फाफामऊ व डलमऊ में दलित-विरोधी अपराधों को अंजाम देने वाले हत्यारों को तुरन्त सख़्त सज़ा दी जाये।
- पीड़ित परिवार के आश्रितों को उचित मुआवज़ा दिया जाये।
- दलित उत्पीड़न के लम्बित मामलों को फ़ास्ट ट्रैक अदालतों से हल करो!
- जातिवादी उत्पीड़न के ख़िलाफ़ कड़े क़ानून बनाओ और इन्हें सख़्ती से लागू करने का इन्तज़ाम करो!
- तमाम जातिवादी संस्थाओं, सभाओं और पंचायतों पर रोक लगाओ!
- राजकीय संस्थाओं की ओर से जातिवादी कार्यक्रमों में भागीदारी और सरकारी अनुदान पर तत्काल रोक लगाओ!

बिटकॉइन और क्रिप्टोकरेंसी: संकटग्रस्त पूँजीवाद के भीतर लोभ-लालच, सट्टेबाज़ी और अपराध को बढ़ावा देने के नये औज़ार

(पेज 16 से आगे)

बर्बाद हो जाते हैं। पिछले एक दशक के दौरान कई बार यह बुलबुला फूटता रहा है, लेकिन नये निवेश और नये सिरे से अटकलबाज़ी की वजह से बुलबुला फिर से फूलने लगता है।

इसके अतिरिक्त आज के दौर में क्रिप्टोकरेंसी का एक अन्य उपयोग इण्टरनेट की मदद से ग़ैर-क़ानूनी रूप से ड्रग्स और हथियारों की ख़रीद-फ़रोख़्त में किया जा रहा है। ऐसा तथाकथित डार्क वेब के ज़रिए किया जाता है जो इण्टरनेट की एक भीतरी परत होती है जिसतक आम इण्टरनेट उपयोगकर्ताओं की पहुँच नहीं होती है और जिसके लिए एक विशेष सॉफ़्टवेयर की ज़रूरत होती है। डार्क वेब में बिटकॉइन जैसी क्रिप्टोकरेंसी का इस्तेमाल ड्रग्स और हथियार को गुमनाम रूप में ख़रीदने में भी किया जा रहा है।

ब्लॉकचेन की अचूक तकनीक की वजह से बिटकॉइन व अन्य क्रिप्टोकरेंसी की माइनिंग की प्रक्रिया में कोई धाँधली होना बहुत मुश्किल है, लेकिन क्रिप्टो-एक्सचेंज के ज़रिए बिटकॉइन में होने वाले निवेश और सट्टेबाज़ी की प्रकिया में धोखाधड़ी और घोटालों के कई मामले सामने आते रहे हैं। मिसाल के लिए हाल ही में कर्नाटक में बिटकॉइन घोटाला सामने आया जिसमें एक व्यक्ति ने अवैध रूप से हज़ारों बिटकॉइन हथिया लिये थे।

इस प्रकार हम पाते हैं कि आज के पूँजीवादी दौर में ब्लॉकचेन जैसी अचूक तकनीक के आधार पर बनी क्रिप्टोकरेंसी का उपयोग सट्टेबाज़ी के ज़रिए बेहिसाब मुनाफ़े के लिए और ड्रग्स व अवैध हथियारों की ख़रीद-फ़रोख़्त करने के लिए और धोखाधड़ी करने के लिए किया जा रहा है। पूँजीवाद की चौहद्दी के भीतर क्रिप्टोकरेंसी का यही हश्र हो सकता है क्योंकि भरोसे में कमी की वजह से वह मुद्रा के रूप में स्थापित नहीं हो सकेगी। लेकिन इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि समाजवाद की उन्नत मंज़िलों में मालों के रूप में सामाजिक श्रम के विनिमय का लेखा-जोखा रखने की एक तकनोलॉजी के रूप में ब्लॉकचेन जैसी या उससे भी उन्नत किसी तकनोलॉजी का इस्तेमाल किया जाये, जो कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के केन्द्रीय संचालन व उसके लेखा-कार्य के संचालन को अधिक आसान और कम श्रमसाध्य बनाने के लिए किया जाये।

पर्यावरण और मज़दूर वर्ग

– भारत

हर साल की तरह इस बार भी इस मौसम में दिल्ली-एनसीआर एक गैस चैम्बर बन गया है जिसमें लोग घुट रहे हैं। दिल्ली और आसपास के शहरों में धुँआ और कोहरा आपस में मिलकर एक सफ़ेद चादर की तरह वातावरण में फैला हुआ है, जिसमें हर इन्सान का साँस लेना दूभर हो रहा है। 'स्मोक' और 'फॉग' को मिलाकर इसे दुनियाभर में 'स्मॉग' कहा जाता है। मुनाफ़े की अन्धी हवस को पूरा करने के लिए ये पूँजीवादी व्यवस्था मेहनतकशों के साथ-साथ प्रकृति का भी अकूत शोषण करती है, जिसका ख़ामियाज़ा पूरे समाज को जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण व ध्वनि प्रदूषण के रूप में भुगतना पड़ता है। इससे भी सबसे ज़्यादा प्रभावित मेहनतकश अवाम ही होती है क्योंकि उनके पास इस प्रदूषण से बचने के लिए कोई भी सुरक्षा नहीं है और न ही इससे होने वाली बीमारियों का उन्हें बेहतर ढंग से इलाज मिल पाता है।

आइए पहले जान लें कि आज प्रदूषण का स्तर कितना जानलेवा हो चुका है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक़ वायु प्रदूषण दिल की बीमारियों, फेफड़े के रोगों, फेफड़े के कैंसर, मस्तिष्क आघात जैसी जानलेवा बीमारियों के जोखिम को बढ़ाने वाला एक प्रमुख कारण है। साँस की नली में संक्रमण का जोखिम भी इससे बढ़ जाता है और दमे की समस्या गम्भीर हो जाती है। दिल्ली को लगातार तीसरी बार दुनिया की सबसे ज़्यादा प्रदूषित राजधानी का 'तमग़ा' मिला है। स्विट्ज़रलैंड की संस्था आई.क्यू. एयर की रेटिंग में दिल्ली दुनिया की 50 राजधानियों में सबसे ज़्यादा प्रदूषण वाला शहर है। यहाँ पर पी.एम 2.5 का स्तर काफ़ी ज़्यादा है, जो फेफड़ों से सम्बन्धित बीमारियों को जन्म देता है। आईक्यू एयर की 2020 वर्ल्ड एयर क्वालिटी रिपोर्ट में 106 देशों के प्रदूषण स्तर का डेटा जांचा गया। ग़ौरतलब है कि दुनिया के 50 सबसे ज़्यादा प्रदूषित शहरों में से 35 भारत में मौजूद हैं, जिनमें दिल्ली सबसे ज़्यादा प्रदूषित शहर और दुनिया की सबसे ज़्यादा प्रदूषित राजधानी है। इसी संस्था की रिपोर्ट के मुताबिक़ वायु प्रदूषण की वजह से नई दिल्ली में साल 2020 में 54 हज़ार लोगों की असामयिक मृत्यु यानी समय से पहले मौत हुई है और भारत मे हर साल 20 लाख लोगों की मौत वायु प्रदूषण की वजह से होती है। यूनिसेफ़ की 2016 की एक रिपोर्ट के अनुसार सिर्फ़ वायु प्रदूषण के कारण हर पाँच वर्षों के दौरान दुनिया में 6 लाख बच्चों की मौत होती है। दुनिया के दो अरब बच्चे प्रदूषित हवा में साँस लेते हैं। इनमें से 62 करोड़ बच्चे दक्षिण एशिया के (जिनमें भारत सबसे ऊपर है), 52 करोड़ अफ़्रीका के तथा 45 करोड़ पूर्वी एशिया व प्रशान्त क्षेत्र के हैं। अब तक के शोधों के अनुसार, वायु प्रदूषण से टी.बी., दमा, फेफड़ों के कैंसर और दिल के रोगों के साथ ही दिमाग़ भी क्षतिग्रस्त हो जाता है। गर्भवती स्त्रियाँ, गर्भस्थ बच्चे और कम उम्र के बच्चे इससे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।

दीवाली के बाद दिल्ली के कई हिस्सों में पार्टिकुलेट मैटर (पीएम) 2.5 की कॉसंट्रेशन 999 प्रति क्यूबिक मीटर मापी गयी। पीएम 2.5 के इस स्तर को स्वास्थ्य विशेषज्ञ बेहद ख़तरनाक मान रहे हैं। सिस्टम ऑफ़ एयर क्वालिटी एण्ड वेदर फ़ॉरकास्टिंग एण्ड रिसर्च (सफ़र) के मुताबिक़ दिल्ली में 4 नवम्बर के बाद से पीएम 2.5 प्रदूषकों के स्तर में 38 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। ऐसे वातावरण में रहने वाले लोगों को गम्भीर बीमारियों का ख़तरा हो सकता है। आँकड़ों के मुताबिक़ साल 2015 में पीएम 2.5 के लम्बे समय तक सम्पर्क में रहने के कारण दुनियाभर में 42 लाख से अधिक लोगों की जान गयी थी। लगातार कई दिनों से दिल्ली का एक्यूआई 'बेहद ख़राब' और 'गम्भीर' की श्रेणी में बना हुआ है।

इस बेहद गम्भीर स्थिति के लिए कारख़ानों की अनियंत्रित धुँआ उगलती चिमनियों के साथ-साथ सड़कों पर हर रोज़ बढ़ती वाहनों की संख्या ही मुख्य तौर पर ज़िम्मेदार है। अकेले दिल्ली की सड़कों पर रोज़ाना 1 करोड़ 15 लाख से भी ज़्यादा मोटर वाहन चलते हैं और इनकी संख्या हर साल बेरोकटोक बढ़ती जा रही है। जाड़े के दिनों में दिल्ली और आसपास के राज्यों में स्मॉग और प्रदूषण की समस्या को अति-गम्भीर बनाने वाला एक अतिरिक्त कारण पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड के तराई अंचल के किसानों द्वारा मध्य अक्टूबर से लेकर नवम्बर के शुरुआती हफ़्ते तक खेतों में धान की पराली जलाना होता है। इसमें पंजाब सबसे आगे है। दूसरे स्थान पर हरियाणा है, लेकिन पश्चिमी उत्तर प्रदेश और तराई में भी यह चलन बढ़ता जा रहा है और अब राजस्थान भी इसकी चपेट में है। जबकि पराली जलाने की अति-गम्भीर समस्या के कई तकनीकी समाधान आज मौजूद हैं। देखा जाये तो मुट्ठीभर जो धनी किसान हैं, उन्हीं के पास खेती की ज़मीन का 90 प्रतिशत के आसपास है और वही पराली जलाते हैं। छोटे किसान पराली नहीं जलाते हैं। अदूरदर्शी मुनाफ़ाख़ोर बड़े किसान यह नहीं सोच पाते कि पराली जलाने से खेत की मिट्टी से पोषक जैविक तत्वों का भारी विनाश होता है और रासायनिक उर्वरकों-कीटनाशकों पर उनकी निर्भरता बढ़ती जाती है। वे सिर्फ़ तात्कालिक बचत और मुनाफ़े के बारे में सोचते हैं। सुपर स्ट्रॉ मैनेजमेण्ट सिस्टम, टीएचएस मशीन का प्रयोग, प्लावर के प्रयोग से पराली को मिट्टी में मिला देना और रोटावेटर और बेलर के इस्तेमाल जैसी पराली के निस्तारण की तमाम तरीक़े उपलब्ध होने के बावजूद लागत कम से कम रखने के लिए धनी किसान इन्हें नहीं अपनाते और सरकारें भी अपनी वर्ग-पक्षधरता के चलते चुप्पी साधे रहती हैं। भारत जैसे पिछड़े पूँजीवादी देशों में अभी भी ऊर्जा के लिए ख़राब क़िस्म के डीज़ल-पेट्रोल और कोयले का ही ज़्यादा प्रयोग किया जाता है, जो प्रदूषण के फैलने का एक बड़ा कारण है।

इन सब पर केजरीवाल ने भी नौटंकी करते हुए दफ़्तर और स्कूल बन्द कर दिये, पर कारख़ानों में जहाँ मज़दूर वायु प्रदूषण के साथ-साथ कारख़ानों के अन्दर के ज़हर से जूझते है, उनके बारे में एक शब्द नहीं बोला। साथ ही यही केजरीवाल सरकार कारख़ाना मालिकों को भी पर्यावरण को तबाह करने का पूरा अधिकार दे रही है। इसके अलावा इस बार प्रदूषण की इस आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए फिर से बिना किसी तैयारी के लॉकडाउन की बात करने लगा।

मज़दूर वर्ग की बात करें तो उन्हें गर्मी में लू के थपेड़े पड़ते हैं, बारिश में नाले का सड़ा हुआ पानी घर में घुसता है और जाड़े में पर्याप्त कपड़े न होने की वजह से वह मारा जाता है। और अब इसी मरणासन्न सड़ते हुए पूँजीवाद ने वायुमण्डल को भी बुरी तरह प्रदूषित कर दिया है। इससे मज़दूर वर्ग को मौसम की मार के साथ-साथ इस प्रदूषण से भी जूझना पड़ रहा है। उच्च और मध्य मध्यम वर्ग तो तमाम तरह के संसाधनों का प्रयोग कर एक हद तक इस प्रदूषण से बच भी जाता है और इसे न हल हो सकने वाली समस्या बताता है। पर मज़दूर इलाक़ों में बिना फ़िल्टर वाली चिमनियों से ज़हरीला धुआँ निकलता रहता है, कूड़े-करकट के निकास तक की ढंग की व्यवस्था नहीं होती, बस मध्यवर्गीय और उच्च वर्गों के इलाक़ों से कूड़ा इकट्ठा कर मज़दूर बस्तियों के आस-पास कहीं जमा कर दिया जाता है। मज़दूर इलाक़ों के आस-पास कूड़े के ढेर से भी कई प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं। इसके अलावा जिन कारख़ानों में मज़दूर काम करने जाते हैं, वहाँ सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नहीं होते। केमिकल लाइन, दाना लाइन जैसे कारख़ानों के धुएँ व गैस के बीच तो मज़दूर आम दिनों में भी रहते ही है, जहाँ पर स्थिति हमेशा गम्भीर श्रेणी में बनी रहती है। ऐसी जगहों पर कितने भी मास्क आदि लगा लिये जायें, किसी काम के नहीं। कारख़ानों की अन्धी कोठरियों में साफ़ हवा तक नहीं आती। इस सब के साथ अब मज़दूरों को इस व्यवस्था द्वारा फैलाये गये प्रदूषण को भी झेलना होगा।

कुल मिलाकर, यही कहा जा सकता है कि वायु प्रदूषण की समस्या पूँजीवादी समाज व्यवस्था की अन्तर्निहित अराजकता, समृद्धिशाली वर्गों की निकृष्ट स्वार्थपरता और विलासिता तथा पूँजीवादी समाज में सरकारों की वर्गीय पक्षधरता का परिणाम है। जनसमुदाय यदि जागरूक होकर और संगठित होकर दबाव बनाये, तभी सत्तातंत्र को इस समस्या से राहत दिलाने के लिए कुछ सार्थक क़दम उठाने को बाध्य किया जा सकता है। इसके साथ ही ज़रूरी है हमें पर्यावरण के विनाश को रोकने के लिए भी पूरे समाज में लोभ-लालच, मतलबपरस्ती और मुनाफ़ाख़ोरी के दम पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था का नाश करने की तैयारी करनी होगी।

महाराष्ट्र में परिवहन निगम कर्मचारियों का आन्दोलन : एक रिपोर्ट

– अविनाश

महाराष्ट्र में चल रहा राजकीय परिवहन निगम (स्टेट ट्रांसपोर्ट - एसटी) कर्मचारियों का संघर्ष हाल के आन्दोलनों में उल्लेखनीय स्थान रखता है जिसने दलाल ट्रेड यूनियनों, एसटी महामण्डल, राज्य सरकार और कोर्ट के दबाव को पीछे छोड़कर आन्दोलन को अभी भी जारी रखा हुआ है। सरकार द्वारा दिये जा रहे आर्थिक वेतन वृद्धि के लालच को भी मज़दूरों ने ठेंगा दिखा दिया है और अभी भी राज्य सरकार से विलय की माँग पर डटे हुए हैं। अगर विलय की माँग पूरी हो जाये, तो मज़दूरों को सरकारी कर्मचारी का दर्जा मिलेगा और उसके तहत सातवाँ वेतन आयोग भी उसी शर्त के अनुसार लागू होगा।

परिवहन कर्मचारियों के काम के बुरे हालात

एसटी कर्मचारी महाराष्ट्र के सबसे दुर्गम स्थानों में और बेहद कठिन हालात में सामान और व्यक्तियों को पहुँचाने का काम करते हैं। महाराष्ट्र परिवहन निगम में 93,000 कर्मचारी काम करते हैं और 16,000 से ज़्यादा बसें मौजूद हैं। राजकीय परिवहन के मामले में देश में महाराष्ट्र एसटी का नेटवर्क बहुत व्यापक है जिसमें 65 लाख से ज़्यादा जनता रोज़ आना-जाना करती है। यहाँ पर 20-20 साल से काम करने के बावजूद कर्मचारियों को 20 से 25,000 भी वेतन नहीं मिलता है, जबकि उसी बस डिपो के वरिष्ठ अधिकारियों को तमाम तरह की सरकारी सुविधाएँ मिलती हैं। ऐसे में एसटी कर्मचारी दो दशक से भी ज़्यादा समय से अपने हक़ और अधिकारों के लिए आवाज़ उठाते रहे हैं। चाहे वह भाजपा, शिवसेना, कांग्रेस, राष्ट्रवादी कांग्रेस या पूँजीपति वर्ग की कोई दूसरी पार्टी हो, सबने उनको अनसुना ही किया है। एसटी कर्मचारियों ने 56,000 हस्ताक्षरों के साथ भाजपा सरकार से विलय के लिए आवेदन भी दिया था। उन्हें निराशा ही हाथ लगी और मौजूदा शिवसेना की सरकार ने भी फिर से इन्हें धोखा ही दिया। राष्ट्रवादी कांग्रेस से जुड़ी एसटी कर्मचारियों की मान्यता प्राप्त यूनियन ने भी पीठ में छुरा घोंपने का ही काम किया है। कई सालों से जारी अन्याय और अत्याचार की प्रतिक्रिया के तौर पर यह आन्दोलन उभरकर सामने आया है।

एसटी आन्दोलन में आये उतार-चढ़ाव

एसटी आन्दोलन को एक महीने से ज़्यादा होने जा रहा है। शुरुआत में ख़ुद को कभी 'मराठी' तो कभी 'हिन्दू' का नेता बताने वाला राज ठाकरे आन्दोलन का नेतृत्व कर रहा था। पर उसकी कोरी बकवास और आश्वासनों से एसटी कर्मचारियों को कुछ नहीं मिला जिसके बाद अवसरवादी राजनीति करते हुए भाजपा एसटी कर्मचारियों के हितचिन्तक के तौर पर सामने आयी और बहुत-से मज़दूरों को गुमराह करने में कामयाब भी हुई। सदाभाऊ खोत और गोपीचन्द पडळकर आन्दोलन में नेता बनकर उभरे। मगर मज़दूर वर्गीय राजनीति की समझ रखने वाला कोई भी व्यक्ति समझ सकता है कि पूँजीपतियों के हितों की रक्षा करने वाले और निजीकरण, उदारीकरण को तेज़ी से आगे बढ़ाने वाले कभी मज़दूर के पक्ष का सही नेतृत्व नहीं कर सकते हैं। भाजपा की सरकार में भी अर्थ मंत्री सुधीर मुंडन दीवार ने 56,000 एसटी कर्मचारियों के हस्ताक्षरों से की गयी विलय की माँग को नकार दिया था।

अभी पिछले दरवाज़े से सदाभाऊ खोत और गोपीचन्द पडळकर ने सरकार से हाथ मिला लिया है और आन्दोलन को रफ़ा-दफ़ा करने की कोशिशें जारी हैं। महा विकास अगाडी की सरकार ने एसटी कर्मचारियों की विलय की माँग तो नहीं मानी है, मगर एसटी कर्मचारियों को वेतन वृद्धि का लालच देकर आन्दोलन को तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। इसके तहत 10 साल काम करने वाले मज़दूरों को 5000, 10-20 साल से काम करने वाले मज़दूरों को 4000 और 20 साल से ऊपर से काम करने वाले मज़दूरों को 2,500 रुपये वृद्धि की घोषणा की है। यह मज़दूरों को भी पता है कि इन पैसों की वृद्धि से उनके जीवन के हालात में कोई बदलाव नहीं आने वाला है। सरकार ने भी बिना देरी किये एक समिति का गठन करने की घोषणा कर दी है। सरकारी समितियाँ कैसे काम करती हैं, यह तो सबको पता है।

एसटी कर्मचारी आन्दोलन के दमन के लिए सरकार ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। 3 दिसम्बर को परिवहन मंत्री अनिल परब ने मज़दूरों को 'मेस्मा' क़ायदा लागू करने की धमकी दी है। शिवसेना के प्रवक्ता संजय राउत ने अधिकारियों को गिरनी कामगार जैसी हालत करने की धमकी दी है। यह भूलना नहीं चाहिए कि मुम्बई में गिरनी मज़दूरों के आन्दोलन को तोड़ने में शिवसेना ने अहम भूमिका अदा की थी। अभी भी सरकार ने 2,500 मज़दूरों पर कार्रवाई की है और कई मज़दूरों को निलम्बित भी किया गया है। मुम्बई के आज़ाद मैदान में महाराष्ट्र के 250 डिपो से आये एसटी कर्मचारी ठण्ड-बरसात, भूख-प्यास और तमाम

(पेज 6 पर जारी)

नमाज़ को लेकर संघियों का उत्पात : फ़ासीवादी ताक़तों द्वारा जनता को बाँटने की नयी साज़िश !

– केशव आनन्द

बीते दिनों नोएडा के सेक्टर-65 के एक पार्क में कुछ लोगों के नमाज़ पढ़ने पर त्रिभुवन प्रताप नामक एक व्यक्ति ने आपत्ति जताते हुए इसकी फ़ोटो यूपी पुलिस और मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को टैग कर ट्वीट कर दिया। इसके बाद पुलिस ने वहाँ पहुँचकर नमाज़ को बन्द करा दिया। ग़ौरतलब है कि यहाँ नमाज़ के लिए आने वाले लोग आस-पास के कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूर हैं। ज़ाहिर है, इन मज़दूरों के पास न तो इतने संसाधन है कि वे कहीं दूर मस्जिद में जाकर नमाज़ पढ़ें, न ही कारख़ानों में उन्हें इतना वक़्त दिया जाता है कि वे इबादत के लिए मस्जिद तक जा सकें। इसलिए काम के दौरान कारख़ाने से थोड़ी देर छुट्टी लेकर ये लोग पास के पार्क में नमाज़ पढ़ लेते हैं। लेकिन इन मज़दूरों से शान्तिपूर्ण तरीक़े से इबादत करने का अधिकार भी छीना जा रहा है। मज़दूर वर्ग का नज़रिया यह है कि धर्म पूर्णत: एक व्यक्तिगत मसला होता है और हर व्यक्ति को कोई भी धर्म मानने या कोई भी धर्म न मानने और अपनी धार्मिक आस्थाओं के अनुसार पूजा-अर्चना करने का अधिकार होना चाहिए। नोएडा की यह घटना दिखला रही है कि पूँजीपतियों की चाकर मोदी सरकार अपने साम्प्रदायिक फ़ासीवादी एजेण्डा को किस प्रकार अमल में ला रही है और आम मेहनतकश जनता के समक्ष विभिन्न धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों को दुश्मन बनाकर पेश कर रही है, जबकि असली दुश्मन पूँजीपतियों का पूरा वर्ग है। पार्कों में व अन्य सार्वजनिक स्थलों पर चौकियाँ सजाकर और डीजे के स्पीकर लगाकर दिनभर भजन-कीर्तन करने या रातभर जगराते करने की पूरी आज़ादी है, लेकिन एक विशिष्ट धर्म के लोगों को नमाज़ पढ़ने की भी इजाज़त नहीं है! क्या यह ग़ैर-बराबरी सही है? क्या मज़दूर वर्ग ऐसे अन्याय का समर्थन कर सकता है? कभी नहीं!

इसके पहले हरियाणा के गुड़गाँव में इन फ़ासीवादी ताक़तों ने पार्क में पढ़ी जा रही नमाज़ को बन्द कराने की कोशिश की थी, जो कि अब भी जारी है। बीते दिनों प्रशासन ने हिन्दुत्ववादी संगठनों के दबाव में गुड़गाँव में नमाज़ की 37 जगहों में से 8 जगहों पर नमाज़ पढ़ने पर पाबन्दी लगा दी। गुड़गाँव के सेक्टर 47 में पिछले कुछ महीनों से विश्व हिन्दू परिषद और अन्य धार्मिक प्रतिक्रियावादी संगठन, शान्तिपूर्ण तरीक़े से नमाज़ पढ़ने वाले लोगों के ख़िलाफ़ प्रतिरोध कर रहे थे। और वे लगातार पुलिस-प्रशासन पर इस नमाज़ को बन्द कराने के लिए दबाव बना रहे थे। साथ ही वे प्रदर्शन के हिंसक होने की धमकी भी दे रहे थे, जिसके बाद हरियाणा प्रशासन ने नमाज़ बन्द कराने का आदेश दे दिया। आज गुड़गाँव में बची 29 जगहों पर भी लोगों को नमाज़ पढ़ने से रोका जा रहा है। इन फ़ासीवादी ताक़तों द्वारा नमाज़ रोकने के लिए कभी इन जगहों पर गोबर रख दिया जा रहा है, या फिर कभी यहाँ हवन का आयोजन किया जा रहा है।

क्या है पूरा मामला?

पिछले कई सालों से एक बड़ी मुस्लिम आबादी गुड़गाँव की अलग-अलग जगहों पर खुले में नमाज़ अदा करती रही है। 2018 में भी हिन्दुत्ववादी उन्मादियों ने नमाज़ बन्द कराने की कोशिश की थी, जिसके कारण गुड़गाँव की 106 अलग-अलग जगहों पर होने वाली नमाज़ प्रशासन की मंज़ूरी के साथ केवल 37 जगहों पर सिमट कर रह गयी थी। उसके बाद पिछले दो महीनों से ये हिन्दुत्ववादी उन्मादी एक बार फिर इसे मुद्दा बनाकर नमाज़ बन्द कराने की कोशिश में लगे हैं। बाहरी लोगों द्वारा इन जगहों पर नमाज़ पढ़ने का हवाला देकर वे इसे भी बन्द कराने की कोशिश में लगे हैं। ग़ौरतलब है कि गुड़गाँव में 70 प्रतिशत से भी अधिक आबादी प्रवासी है जो रोज़ी-रोटी के लिए शहर काम करने आती है। ये लोग सालों से यहीं रह रहे हैं। आबादी के हिसाब से उनकी नमाज़ के लिए पर्याप्त मस्जिदें मौजूद नहीं हैं, जिसके कारण ये लोग सालों से खुले में नमाज़ पढ़ते हैं। लेकिन विश्व हिन्दू परिषद जैसे उन्मादी संगठनों द्वारा उनके इस जनवादी अधिकार को भी छीना जा रहा है। मज़दूर वर्ग को एक वर्ग समाज और विशेष तौर पर पूँजीवादी समाज में धर्म के अस्तित्व और उसकी भूमिका के बारे में शिक्षित-प्रशिक्षित करना, उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण देना, उसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी नज़रिया देना एक दीर्घकालिक कार्यभार है और मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी हिरावल निरन्तर करता है। लेकिन वह किसी भी सूरत में धार्मिक आधार पर किसी भी समुदाय के उत्पीड़न के ख़िलाफ़ होता है।

इस पूरे प्रकरण में पुलिस-प्रशासन ने भी पक्षपाती तरीक़े से इन उन्मादियों का साथ दिया है। एक फ़ेसबुक पोस्ट पर देशद्रोह का मुक़दमा लगा देने वाली पुलिस के सामने लगातार साम्प्रदायिक और हिंसक नारे लगाये जा रहे थे, लेकिन इसके बावजूद इन उन्मादियों पर कोई सख़्त कार्रवाई नहीं की गयी। केवल दिखावटी तौर पर कुछ लोगों को गिरफ़्तार किया गया। साथ ही, 2018 में प्रशासन द्वारा तय की गयी जगहों पर शान्तिपूर्ण तरीक़े से नमाज़ पढ़ने के बावजूद नमाज़ को रुकवा देने का फ़ैसला पुलिस प्रशासन के चरित्र को दिखाता है। इस रूप में आज पुलिस से लेकर राज्यसत्ता के हर अंगों का भगवाकरण नंगे तौर पर नज़र आ रहा है।

फ़ासीवाद की यह आम चारित्रिक अभिलाक्षणिकता होती है कि यह बड़ी पूँजी की सेवा के लिए टटपुँजिया वर्गों का एक प्रतिक्रियावादी आन्दोलन खड़ा करता है और जनता के समक्ष एक नक़ली शत्रु पेश करता है और जनता की तमाम समस्याओं के लिए उसे ही ज़िम्मेदार ठहराता है। यह नक़ली शत्रु अक्सर अल्पसंख्यक समुदायों के लोग होते हैं और साथ ही इनमें फ़ासीवादी ताक़तें अपने राजनीतिक विरोधियों को भी शामिल कर देती हैं। इस प्रकार ऐसे अल्पसंख्यक समुदायों और साथ ही राजनीतिक विरोधियों के जनवादी अधिकारों का भी हनन किया जाता है, और साथ ही इसे एक बड़ी आबादी के बीच सही ठहराने का काम भी किया जाता है। आज संघी फ़ासिस्ट यही कर रहे हैं। जगह-जगह धार्मिक उन्माद फैलाकर ये फ़ासीवादी ताक़तें अपने मंसूबों को पूरा करने में लगी हैं। लगातार बढ़ती लूट, महँगाई, बेरोज़गारी के कारण जनता में बढ़ते असन्तोष को ये ताक़तें धार्मिक रंग देने की कोशिश कर रही हैं। हमारे सामने इन समस्याओं के बरक्स एक नक़ली शत्रु खड़ा करने का काम किया जा रहा है, ताकि हम अपनी असल समस्याओं को भूलकर धर्म के नाम पर एक दूसरे का गला काटें और ये सत्ताधारी नफ़रत को फैलाकर अपनी चुनावी रोटियाँ सेकें। लव-जिहाद से लेकर गौ-रक्षा को मुद्दा बनाकर ये ताक़तें आज धार्मिक अल्पसंख्यकों को निशाना बना रही हैं। नमाज़ के ख़िलाफ़ जनता में नफ़रत फैलाना इसी कड़ी में बढ़ाया हुआ अगला क़दम है। ज़ाहिरा तौर पर हर प्रकार की (धार्मिक, जातीय या क्षेत्रीय) कट्टरता ग़लत है। लेकिन शान्तिपूर्ण तरीक़े से इबादत करना लोगों का जनवादी अधिकार है, जिसे ये फ़ासीवादी ताक़तें धार्मिक अल्पसंख्यकों से छीनने का काम कर रही हैं। और इन अल्पसंख्यकों में भी सबसे बड़ा निशाना ग़रीब मुस्लिम आबादी ही बनती है। इस रूप में ये फ़ासीवादी ताक़तें मज़दूरों को बाँटकर बड़ी पूँजी के प्रति अपनी वफ़ादारी भी साबित करती हैं।

आज आरएसएस और विश्व हिन्दू परिषद सरीखी फ़ासीवादी ताक़तों के ख़िलाफ़ हमें अपनी वर्ग आधारित एकजुटता बनानी होगी। साथ ही हमें हर प्रकार के जनवादी अधिकारों पर होने वाले हमलों के ख़िलाफ़ खड़ा होना होगा। हमें रोज़गार, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा आदि बुनियादी सवालों पर एकजुट होना होगा और नफ़रत के ज़रिए जनता को बाँटने वाली साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति का पर्दाफ़ाश करना होगा। हमें राम प्रसाद बिस्मिल-अशफ़ाक़ उल्ला ख़ान की दोस्ती और क़ुर्बानी की विरासत को याद करना होगा। नफ़रती राजनीति फैलाने वाले इन उन्मादियों के ख़िलाफ़ हमें आज से ही जंग छेड़ देनी होगी। इतिहास में फ़ासिस्टों को मेहनतकश जनता ने ही धूल चटायी थी और आज इन हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादियों को भी आम मेहनतकश जनता ही सबक़ सिखायेगी।

महाराष्ट्र में परिवहन निगम कर्मचारियों का आन्दोलन : एक रिपोर्ट

(पेज 5 से आगे)

तरह की कठिनाइयों का सामना करते हुए डटे हुए हैं।

पूँजीवादी पार्टियों के चरित्र को पहचानो

1947 के बाद देश की सत्ता पूँजीपति वर्ग के हाथ में चली गयी थी और पूँजीवादी विकास को गति देने के लिए उसके बाद के पहले 3 दशकों में एसटी जैसी कई सार्वजनिक सेवाओं और उद्योगों को खड़ा किया गया था। 1991 से अपनायी गयी निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों के तहत पूँजीपतियों को खुले तौर पर श्रम और प्राकृतिक संसाधनों को लूटने की छूट दी गयी। सत्ता में आने वाले सभी पूँजीवादी दलों ने इन नीतियों को ही आगे बढ़ाया है। सार्वजनिक व्यापार-उद्योग-सम्पत्ति का निजीकरण जमकर किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के श्रमिकों पर लगातार छँटनी, ठेकाकरण और अन्य समस्याएँ थोप दी गयी हैं। पिछले दो दशकों में महाराष्ट्र सरकार द्वारा राज्य परिवहन निगम में घाटा दिखाकर चरणबद्ध तरीक़े से निजीकरण किया गया है। नतीजतन, एसटी का ग़बन और श्रमिकों का उत्पीड़न बढ़ गया। इसके ख़िलाफ़ कर्मचारियों ने कई आन्दोलन किये लेकिन उचित नेतृत्व और सही रास्ते के अभाव में वे आगे नहीं बढ़े।

एसटी कर्मचारियों के बीच पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करने वाली भाजपा, कांग्रेस, राष्ट्रवादी, मनसे, वंचित बहुजन अगाडी और अन्य के चरित्र को उजागर करना भी ज़रूरी है। ये सभी पार्टियाँ पूँजीपतियों के ही अलग-अलग धड़ों की नुमाइन्दगी करती हैं। अक्सर ये विरोधी पक्ष के तौर पर मज़दूरों के सामने सिर्फ़ ढोंग करती हैं और सत्ता में आने के बाद निजीकरण-उदारीकरण की ही नीतियाँ लागू करती हैं। सत्ता में आने के बाद आन्दोलन का दमन करने में ये भी कोई कसर नहीं छोड़ती हैं। जो भाजपा एसटी कर्मचारी आन्दोलन का नेतृत्व कर रही थी, उसी भाजपा की मोदी सरकार ने 2022 से 2025 के 4 वर्षों में 6 लाख करोड़ रुपये की सरकारी सम्पत्ति का निजीकरण किया है। महा विकास अगाडी के मुख्य नेता शरद पवार ने महाबलेश्वर में कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि एसटी महामण्डल का राज्य सरकार में विलय स्वीकार किया गया तो अलग-अलग विभाग के कर्मचारी भी इसी तरह अपने हक़ों के लिए आगे आयेंगे। महाराष्ट्र में इसके अलावा 56 महामण्डल हैं जिसमें आशा, आँगनवाड़ी कर्मचारी, स्वच्छता कर्मचारी जैसे लाखों कर्मचारी मौजूद हैं।

एसटी कर्मचारियों को पूँजीवादी मीडिया और न्यायालय के चरित्र को पहचानना होगा

विभिन्न प्रिण्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा लगातार श्रमिक आन्दोलन के बारे में बेहद भ्रामक ख़बरें दी गयी हैं। जब भाजपा आन्दोलन में नेतृत्व कर रही थी, तब भाजपा समर्थक मीडिया ने कुछ समय के लिए सकारात्मक समाचार दिया; लेकिन अब उन्होंने कर्मचारियों को निशाना बनाना शुरू कर दिया है। यह मीडिया भी देश के बड़े पूँजीपतियों के हाथ में है तो इसकी भूमिका श्रमिकों के ख़िलाफ़ होगी। मज़दूर वर्ग को एक स्वतंत्र मज़दूर वर्गीय मीडिया की आवश्यकता है।

एसटी कर्मचारियों के नेतृत्व में और कुछ श्रमिकों के एक वर्ग में संवैधानिक अधिकारों, श्रम क़ानूनों और अदालतों के बारे में भी कई ग़लत धारणाएँ हैं। जिस तत्परता के साथ औद्योगिक न्यायालय और बाद में उच्च न्यायालय ने हड़ताल के ख़िलाफ़ आदेश जारी किया और फिर सरकार की सरकारी समिति की रिपोर्ट पर भरोसा करने के लिए कहा, उससे क़ानूनी प्रक्रिया की सीमाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। इस समिति की अध्यक्षता वरिष्ठ सरकारी अधिकारी करेंगे। यह सबको पता है कि कमेटियों का काम हमेशा सवालों को लम्बे समय तक लटकाये रखने और जनता को भ्रमित करने का रहा है। हमें न्यायालय की सीमाओं को समझना भी बेहद आवश्यक है। न्यायालयों ने सरकार की कार्यकारी शाखा में हस्तक्षेप करने से बार-बार इन्कार किया है। इस बीच, सरकार अब तक विभिन्न क़ानूनी अधिकारों का उपयोग कर एक हज़ार से अधिक श्रमिकों को निलम्बित कर चुकी है। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि अदालतें किसकी सेवा कर रही हैं?

एसटी कर्मचारी आन्दोलन में मज़दूर वर्गीय राजनीति की समझ की ज़रूरत

एसटी कर्मचारी आन्दोलन स्वतःस्फूर्त तरीक़े से और भावनात्मक आवेग से लम्बे समय तक नहीं चल सकता है। इसे आगे बढाने के लिए एक सुस्पष्ट मज़दूर वर्गीय राजनीतिक समझदारी की बेहद ज़रूरत है, तभी इसके दम पर आन्दोलन को सही कार्यदिशा दी जा सकती है। एसटी कर्मचारी आन्दोलन को जनवादी तरीक़े से अपना प्रतिनिधिमण्डल चुनने की ज़रूरत है जो बिचौलियों पर निर्भर रहने के बजाय सरकार से ख़ुद बात करे। दूसरी ओर, पिछली यूनियन ने भले ही धोखा दिया हो, मगर संगठित हुए बिना एसटी कर्मचारियों के पास लड़ने का कोई रास्ता नहीं है। उन्हें जनवादी आधार पर संगठित नयी जुझारू यूनियन बनाकर आन्दोलन को धार देने की ज़रूरत है। इस आन्दोलन का भविष्य निश्चित तौर पर आन्दोलन की सही वैचारिक समझदारी और कार्य दिशा से तय होगा। आज राज्यभर में क़रीब लाख कर्मचारी बहुत बड़ी शक्ति बन सकते हैं। सरकार द्वारा आन्दोलन को बदनाम करने की कोशिश की जा रही है, जिसमें मीडिया भी सरकार के साथ है। ऐसे में जनता का समर्थन हासिल करने के लिए एसटी कर्मचारियों को अपनी माँगों को लेकर के जनता के बीच भी जाना होगा।

सी.ओ.पी-26 की नौटंकी और पर्यावरण की तबाही पर पूँजीवादी सरकारों के जुमले

– भारत

बीते 31 अक्टूबर से 13 नवम्बर तक स्कॉटलैण्ड के ग्लासगो में 'कॉन्फ्रेंस ऑफ़ पार्टीज़ (सीओपी) 26' का आयोजन किया गया। पर्यावरण की सुरक्षा, कार्बन उत्सर्जन और जलवायु संकट आदि से इस धरती को बचाने के लिए क़रीब 200 देशों के प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए। कहने के लिए पर्यावरण को बचाने के लिए इस मंच से बहुत ही भावुक अपीलें की गयीं, हिदायतें दी गयीं, पर इन सब के अलावा पूरे सम्मेलन में कोई ठोस योजना नहीं ली गयी है। (ज़ाहिर है कि ये सब करना इनका मक़सद भी नहीं था।)

कहने के लिए इस सम्मेलन का मक़सद था कि वैश्विक उत्सर्जन कम करने का लक्ष्य तय करना और उसे देश की नीतियों में लागू करना। साथ ही सीओपी-21 में जो पेरिस समझौता हुआ था, उसके अन्तर्गत कितना लक्ष्य पूरा हुआ, इसकी भी रिपोर्ट पेश की गयी। पेरिस समझौते में 194 देशों के राष्ट्राध्यक्षों, प्रधानमंत्रियों, पर्यावरण मंत्रियों ने मिलकर तय किया था कि भूमण्डलीय ताप जो कि सदी के अन्त तक 2 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है, उसे कम कर 1.5 डिग्री तक लाना है। इस सम्मेलन में उत्सर्जन को कम करने के लिए किये गये प्रयोगों की भी रिपोर्ट पेश की गयी। रिपोर्ट से सिर्फ़ और सिर्फ़ निराशा ही हाथ लगी। क्योंकि सभी देशों की सरकारों को पूँजीपति वर्ग के हितों का पहले ध्यान रखना होता है, न कि पर्यावरण का।

2030 तक राष्ट्रीय स्तर पर उत्सर्जन कम करने का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया था, सभी देश उसमें बहुत पीछे हैं। 2030 तक 45 प्रतिशत उत्सर्जन कम करना था, पर अभी हालात यह कि यह दुगने से भी तेज़ रफ़्तार से बढ़ रहा है। अगर इसी प्रकार यह उत्सर्जन होता रहा तो सदी के अन्त तक यह 2.7 डिग्री सेल्सियस होगा जो कि पेरिस समझौते की तय सीमा से क़रीब 1 डिग्री सेल्सियस ज़्यादा है। इस हिसाब से अभी 2030 तक उत्सर्जन कम करने का लक्ष्य दूर की कौड़ी ही साबित होगा। पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए पर्यावरण का शोषण तो करेंगे ही!

इसमें विकासशील देशों पर ज़ोर दिया गया कि जीवाश्म ईंधन से पूँजी निवेश स्थानान्तरित करके 'हरित' तकनीक और आधारभूत में निवेश करें। पर असल बात तो यह है कि हरित विकास तकनीक विश्वभर में बहुत अधिक उन्नत नहीं की गयी है क्योंकि इस पर निवेश ही नहीं किया गया है। जितनी हरित तकनीक है वह भी उन्नत देशों के पास ही है और वे उसे विकासशील देशों को नहीं देना चाहते। असल में ये पर्यावरण से नहीं बल्कि राजनीतिक अर्थशास्त्र से जुड़ा है। विकासशील देशों के शासक पूँजीपति वर्ग को हरित तकनोलॉजी अपनाने और जीवाश्म-ईंधन का इस्तेमाल छोड़कर कार्बन उत्सर्जन को कम करने के उपदेश देने वाले विकसित देश के पूँजीपति वर्ग अपने उभार के दौर में इन्हीं जीवाश्म ईंधनों का ज़बर्दस्त इस्तेमाल कर चुके हैं। इसलिए विकासशील देशों का पूँजीपति वर्ग इनके इन उपदेशों पर कहता है कि जब तुमने किया तो ठीक, जब हम करें तो ग़लत! लेकिन असली बात यह है कि मुनाफ़े की ख़ातिर आपस में गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा में लगे अलग-अलग देशों के पूँजीपति वर्ग और एक देश के भीतर पूँजीपति वर्ग के अलग-अलग धड़े कभी भी पर्यावरण की परवाह नहीं कर सकते हैं। वे धरती को बचाने के लिए दीर्घकालिक तौर पर प्रकृति को संरक्षित करने की कोई नीति अपना ही नहीं सकते हैं। कोई भले दिल का पूँजीपति ऐसा करेगा तो उसका मुनाफ़ा मारा जायेगा और कोई और पूँजीपति उसे निगल जायेगा। सच्चाई तो यह है कि मेहनत और कुदरत की लूट पर टिकी व्यवस्था में पर्यावरण को बचाने की उम्मीद करना व्यर्थ है। यही कारण है कि अब समाजवाद का प्रश्न मनुष्यता के अस्तित्व का प्रश्न बन गया है।

इण्टरनेशनल एनर्जी एरिया की रिपोर्ट बताती है कि 509 टन कोयले, कच्चे तेल और गैस का उत्पादन सिर्फ़ 2020 में ही किया गया है। वहीं अमेरिका आज पूरे विश्व का 20 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन कर रहा है, चीन 11 प्रतिशत, रूस 7 प्रतिशत व ब्राज़ील 5 प्रतिशत।

इस सम्मेलन में दो सबसे अधिक कार्बन उत्सर्जन करने वाले देशों अमेरिका और चीन के बीच समझौता हुआ कि दोनों मिलकर ग्लोबल वार्मिंग को कम करेंगे। ऐसे समझौतों पर सिर्फ़ हँसी ही आ सकती है, क्योंकि हमेशा की तरह इसपर कोई ठोस बात नहीं कही गयी है कि आख़िर कैसे ग्लोबल वार्मिंग को वे देश रोकेंगे जो सबसे ज़्यादा कार्बन उत्सर्जन करते हैं! साथ ही, ऐसे क़रार पहले भी हो चुके हैं लेकिन स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया है। इसकी वजह ठीक यही है कि पूँजीपति वर्ग पर्यावरण को बचाने की क़ीमत अपने मुनाफ़े के तौर पर नहीं चुकाना चाहता है।

इस समय इन दोनों साम्राज्यवादी देशो की आपस में गलाकाटू प्रतियोगिता चल रही है। चीन कार्बन उत्सर्जन में अमेरिका को टक्कर दे रहा है। इनके बीच हुए समझौते की सच्चाई इससे ही सामने आ जाती है कि इस बीच चीन 143 नये कोयला प्लाण्ट लगाने जा रहा है और 1000 के क़रीब प्लाण्ट पहले से ही कार्यरत हैं। वहीं अमेरिका के बाइडन प्रशासन ने घोषणा की है कि वो भी आगामी समय में कच्चे तेल और गैस का उत्पादन करेंगे, जो क़रीब 50 मिलियन बैरल होगा और इसके साथ ही 4.4 टन जीवाश्म गैस भी बनायेगा। असल में सम्मेलन में समझौता सिर्फ़ दिखावे के लिए किया गया है। इसके पीछे मुनाफ़े की प्रतिस्पर्धा छिपी हुई है।

चीन की आर्थिक वृद्धि का आधार ही कोयला और तेल आधारित उद्योग हैं। इन्हीं उद्योगों और उनमें मज़दूरों के भयंकर शोषण के बूते चीन पिछले कई वर्षों से ज़बर्दस्त वृद्धि कर रहा है। दूसरी तरफ़ अमेरीका और यूरोपीय अर्थव्यवस्था भी संकट की मार झेल रही है। उन्हें चीन से ही चुनौती भी मिल रही है जो आने वाले समय में उनके लिए और भी गम्भीर होती जायेगी।

इसके साथ ही साम्राज्यवादी देशों ने दिखावे के लिए 100 बिलियन डॉलर पर्यावरण सुधार के लिए देने की बात

कही, यह स्पष्ट नहीं किया कि किस रूप में इसका आवण्टन होगा और इसे 2023 तक टाल दिया गया।

वार्ता के आख़िर में जीवाश्म ईंधन के प्रयोग को 'फ़ेज़ आउट' करने के बजाय 'फ़ेज़ डाउन' करने की बात कही गयी जो कि विकसित साम्राज्यवादी देशों की चौधराहट दिखाता है। वहीं दूसरी ओर जीवाश्म ईंधन पर सब्सिडी को पूरी तरह बन्द करने का प्रस्ताव भी रखा गया जिसका भारत और चीन ने विरोध किया। इसपर भारत के जलवायु परिवर्तन मंत्री ने कार्बन बजट पर विकासशील देशों के न्योचित अधिकार की बात कही। इसी के साथ यह सम्मेलन पूरी तरह विफल हो गया क्योंकि भारत और चीन जैसी उभरती पूँजीवादी ताक़तों की भी अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षाएँ हैं और राजनीतिक मसलों पर भारत अपने राजनीतिक हितों को ही प्राथमिकता देता है। यह भी दर्शाता है कि भारत साम्राज्यवादी देशों का दलाल नहीं बल्कि कनिष्ठ साझीदार है।

भारत के प्रधानमंत्री मोदी ने भी इस सम्मलेन को सम्बोधित किया और बड़ी लोकलुभावन जुमलेबाज़ी की जिसके लिए वो जाने जाते हैं। मोदी ने बताया कि भारत 2030 तक अपनी ग़ैर-जीवाश्म ऊर्जा को 500 गीगावाट तक पहुँचाएगा और 50 प्रतिशत ऊर्जा की ज़रूरत अक्षय ऊर्जा से पूरी करेगा। इसके साथ कार्बन उत्सर्जन में एक अरब टन की कमी करेगा तथा 2070 तक भारत नेट ज़ीरो का लक्ष्य हासिल करेगा।

ये सब बातें बड़े मंच से पेश करने के लिए किये जा रहे दिखावे का अंग थीं, पर असल में फ़ासीवादी मोदी सरकार पर्यावरण का दोहन कर पूँजीपति वर्ग की सेवा करने में सबसे आगे रहती है। जिस तरह से ग्लोबल वार्मिंग के कारण वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है, उसका असर हिमालय पर्वत श्रृंखला पर भी दिख रहा है। एक अनुमान के मुताबिक़, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश और जम्मू और कश्मीर में लगभग सैंकड़ो की तादाद मे ग्लेशियर हैं। हाल के समय हिमालयी क्षेत्र के कई भाग ऐसे हैं जहाँ बांध निर्माण व सड़क निर्माण आदि के कारण पर्वतों की ढाल पूर्व की अपेक्षा अधिक हो गयी है। सड़कें आदि बनाने के लिए बड़े पैमानों पर वृक्षों की कटाई के कारण भी पहाड़ों पर मृदा अपरदन की दर तेज़ हुई है और इन कारणों के वजह से भूस्खलन की घटनाएँ बढ़ी हैं। हालात कितने भयावह हैं, इस बात का अन्दाज़ा इससे लगाया जा सकता है कि सिर्फ़ पिछले दो सालों में हिमाचल व उत्तराखण्ड में क़रीब 170 भूस्खलन की घटनाएँ हो चुकी हैं। वहीं 'काउंसिल ऑन एनर्जी एनवॉयरमेण्ट एण्ड वाटर' ने अपने हाल के अध्ययन में बताया है कि 1970 से लेकर अब तक उत्तराखण्ड में भूस्खलन व बाढ़ जैसी त्रासदियाँ 4 गुना बढ़ी हैं।

चार धाम महामार्ग सड़क परियोजना के भी परिणाम घातक सिद्ध हो रहे हैं, जिसे प्रधानमंत्री मोदी ने बहुत शोर-शराबे के साथ उद्घाटित किया था ताकि एक साथ विकास पुरुष व हिन्दू हृदय सम्राट की छवि को मज़बूत कर सकें। इस परियोजना के शुरू होने के बाद क़रीब 25,300 पेड़ काटे जा चुके हैं और क़रीब 373 हेक्टेयर वन भूमि प्रभावित हुई है। जब स्थानीय लोगों ने इस परियोजना के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी व इसे चुनौती दी तो सरकार ने क़ानूनों में मौजूद प्रावधानों की ख़ामियों का फ़ायदा उठाते हुए एनजीटी के समक्ष इस सड़क परियोजना को 57 हिस्सों में बँटा हुआ क़रार दे दिया, क्योंकि 100 किमी से कम दूरी के हाइवे निर्माण के लिए एनवायर्नमेण्टल क्लीयरेंस यानी पर्यावरणीय इजाज़त की ज़रूरत ही नहीं होती। ये दिखाता है कि बड़े मंचों पर जाकर साफ़ नीयत के कितने भी दावे प्रधानमंत्री कर लें, पर मज़दूर-मेहनतकश आबादी के शोषण के साथ-साथ पर्यावरण का दोहन कर अपने मालिकों की सेवा करना ही उसका असल मक़सद है।

बताने की ज़रूरत नहीं कि पूँजीवादी देशों के बीच पर्यावरण को बचाने के सवाल पर आम सहमति बन पाना मुश्किल है। प्रतिस्पर्धा और बाज़ार की अन्धी ताक़तों पर टिकी एक पूँजीवादी दुनिया में विभिन्न देशों के पूँजीवादी लुटेरे कभी एकजुट होकर मानवता के दूरगामी हितों के बारे में नहीं सोच सकते। मुनाफ़े की गलाकाटू प्रतियोगिता और एक दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ उन्हें कभी इस पर सोचने की इजाज़त नहीं दे सकती। पर्यावरणीय आपदा पूँजीवाद जनित आपदा है। इस दुनिया के आदमख़ोर राष्ट्रपारीय-बहुराष्ट्रीय निगम और समूचा पूँजीपति वर्ग ही है जो पर्यावरण तबाह कर रहे हैं। दुनियाभर की पूँजीवादी सरकारें इन्हीं पूँजीपति वर्गों की नुमाइन्दगी करती हैं। भारत में फ़ासीवादी मोदी सरकार पर्यावरण को और भी अधिक भयानक रूप से तबाह-बर्बाद कर रही है, ताकि यहाँ के कॉरपोरेट पूँजीपति वर्ग समेत समूचे पूँजीपति वर्ग की और भी नग्न तरीक़े से सेवा की जा सके। इसलिए आज पहले से कहीं अधिक ज़रूरत है कि इस मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंका जाये और मानव-केन्द्रित समाजवादी व्यवस्था का निर्माण किया जाये। ऐसी व्यवस्था का निर्माण एक समाजवादी क्रान्ति के ज़रिए ही हो सकता है और एक ऐसी व्यवस्था में ही प्रकृति और मानव समाज के बीच एक सही सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, जिसमें इन्सान केवल प्रकृति का उपभोग व इस्तेमाल ही नहीं करता, बल्कि उसे लगातार पुनर्जीवन भी प्रदान करता है। संक्षेप में, पर्यावरणीय संकट कोई "मानव-जनित संकट" नहीं है, बल्कि पूँजीवाद-जनित संकट है और पूँजीवाद के ध्वंस और समाजवाद के निर्माण के साथ ही इसका अन्त हो सकता है।

आज दो ही रास्ते हैं या तो हम चुपचाप पर्यावरण को तबाह होते देखते रहें, सी.ओ.पी-26 जैसी नौटंकी देखते रहें या फिर मानवता और पर्यावरण को बर्बाद करने वाली इस व्यवस्था को बदल डालें। तय हमें करना है।

खेती क़ानूनों पर रस्साकशी के पहले दौर में खेतिहर पूँजीपति वर्ग की औद्योगिक-वित्तीय बड़े पूँजीपति वर्ग पर जीत और मज़दूर वर्ग के लिए इसके मायने

(पेज 1 से आगे)

(विशेष तौर पर पंजाब, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश के धनी किसान व कुलक) 26 नवम्बर 2020 से ही दिल्ली के सिंघू व टीकरी बॉर्डर को जाम करके बैठे हुए थे। मोदी सरकार ने औद्योगिक-वित्तीय पूँजीपति वर्ग के हितों को प्रधानता देते हुए एमएसपी की व्यवस्था को समाप्त करने की मंशा से और साथ ही विशेष तौर पर तीसरे क़ानून द्वारा खाद्यान्न के व्यापार के क्षेत्र में कालाबाज़ारी और जमाख़ोरी की खुली आज़ादी देने के वास्ते तीन खेती क़ानून पेश किये थे। धनी किसानों-कुलकों ने तीनों ही क़ानूनों का विरोध किया क्योंकि यही किया जा सकता था। यह सम्भव नहीं था कि वे तीन में से दो खेती क़ानूनों का ही विरोध करते और तीसरे पर चुप रहते या उसका समर्थन करते! इससे उनकी राजनीति के वर्ग चरित्र की कलई खुल जाती। ये तीनों क़ानून एक पैकेज के समान थे और इनका एक साथ ही विरोध हो सकता था।

लेकिन धनी किसानों व कुलकों का असली विरोध पहले दो क़ानूनों पर था, जो कि एमएसपी की व्यवस्था को निशाना बनाते थे। किसान आन्दोलन के जारी रहने के दौरान ही बीकेयू (उग्राहां) के नेता जोगिन्दर सिंह उग्राहां और क्रान्तिकारी किसान यूनियन के नेता दर्शन पाल ने अपने-अपने शब्दों में स्वीकार भी किया था कि मूल मुद्दा तो एमएसपी ही है और यदि मोदी सरकार पहले दो क़ानूनों को वापस ले ले तो भी वे आन्दोलन वापस लेने को तैयार हैं। सच्चाई यह है कि तीसरा क़ानून जो कि मूलभूत वस्तुओं के रूप में परिभाषित मालों की स्टॉकिंग पर सीमा निर्धारित कर जमाख़ोरी पर रोक लगाने के नियम को रद्द कर देने का लक्ष्य रखता था, वह मूल मुद्दा नहीं था और स्वयं धनी किसान व कुलक अतीत में इस सीमा को अयथार्थवादी बताते रहे हैं। कारण यह है कि ये धनी किसान व कुलक ही अक्सर आढ़ती और व्यापारी की भूमिका में भी होते हैं और वे स्टॉकिंग पर सीमा को हटाना चाहते थे। इसलिए तीसरा क़ानून कुलक आन्दोलन का प्रमुख निशाना नहीं था, बल्कि पहले दो क़ानून थे जो कि खेती उत्पाद के विपणन (बिकवाली) का उदारीकरण करते थे और ठेका खेती की व्यवस्था में बड़ी पूँजी के प्रवेश के लिए दरवाज़े खोलते थे। ठेका खेती स्वयं कुलकों और धनी किसानों द्वारा तो आज भी चल रही है, जिसके ज़रिए धनी किसान और कुलक ग़रीब और मँझोले किसानों को लूटते हैं। धनी किसानों-कुलकों की आपत्ति इस बात पर है कि शोषण के इस क्षेत्र में बड़ी पूँजी को क्यों घुसने दिया जा रहा है!

मोदी सरकार द्वारा तीनों खेती क़ानून वापस लिये जाने के साथ धनी कुलक और किसान, यानी पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के खेतिहर पूँजीपति वर्ग ने आपसी झगड़े के इस पहले दौर में भारत के औद्योगिक-वित्तीय बड़े पूँजीपति वर्ग पर तात्कालिक जीत हासिल की है। मोदी सरकार के इस क़दम के तात्कालिक और दूरगामी कारण क्या हैं? आइए देखते हैं।

22 नवम्बर को मेघालय के राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने मीडिया के ज़रिए मोदी सरकार को यह सन्देश दे दिया था कि उत्तर प्रदेश के आगामी विधान सभा चुनावों में भाजपा की पश्चिमी उत्तर प्रदेश में करारी हार होने वाली है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का ज़मीनी तंत्र भी भाजपा के नेतृत्व को ऐसी ही रिपोर्टें दे रहा था। सामान्य तौर पर उत्तर प्रदेश और ख़ासकर पूर्वी उत्तर प्रदेश में रोज़गार, खाद्य सुरक्षा और ग़रीबी के मोर्चे पर भाजपा सरकार की ख़राब हालत देखते हुए भाजपा को उत्तर प्रदेश की गद्दी छिनने का भय सता रहा है। अगर ऐसा होता है तो 2024 के लोकसभा चुनावों में भाजपा के जीतने की सम्भावना भी कम हो जायेगी। इसलिए मोदी सरकार ने तात्कालिक राजनीतिक ज़रूरतों की वजह से कृषि क़ानूनों को रद्द करने का फ़ैसला किया है। इसका बस इतना मतलब है कि कम से कम तात्कालिक रूप से खेतिहर बुर्जुआ वर्ग मोदी सरकार को कृषि क़ानूनों के मोर्चे पर झुकाने में सफल रहा। दूसरे शब्दों में, 2024 में लोकसभा चुनावों में जीत का रास्ता 2022 में उत्तर प्रदेश चुनावों में जीत से होकर जाता है और 2022 में उत्तर प्रदेश चुनावों में जीत का रास्ता भाजपा के लिए इस बार पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जीत से होकर जाता है क्योंकि बाक़ी उत्तर प्रदेश में भी भाजपा की स्थिति बहुत बेहतर नहीं है, हालाँकि अभी भी भाजपा को ताक़तवर चुनौती देने वाली कोई ताक़त मैदान में मौजूद नहीं है। लेकिन फिर भी एक जोखिम है और भाजपा नेतृत्व 2024 के चुनावों के मद्देनज़र ऐसा कोई जोखिम उठाना नहीं चाहता है, जो उसके हाथों से गद्दी छीन ले।

ग़ौरतलब है कि भाजपा के एक नेता श्रीमान जाटव जी ने 23 नवम्बर को खेती क़ानूनों की वापसी की ख़बर के आने के तुरन्त बाद ही एनडीटीवी पर कहा कि कुछ समय बाद कृषि क़ानूनों का कोई और संस्करण पेश किया जायेगा और तब तक "सभी किसानों" को राज़ी कर लिया जायेगा! मोदी ने भी कहा कि चूँकि उनकी सरकार "किसानों के एक छोटे हिस्से" को राज़ी नहीं कर पायी, इसलिए वह कृषि क़ानूनों को वापस ले रही है! यह मोदी सरकार की मंशा की ओर साफ़ इशारा करता है। बड़ी औद्योगिक-वित्तीय पूँजी देर-सबेर न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के तंत्र को ध्वस्त करना चाहती है और मोदी सरकार किसी न किसी तरीक़े से फिर से ऐसा करने का प्रयास करेगी। लेकिन यह बाद की बात है और एक दीगर मसला है। अभी हमें पहला तात्कालिक कारण समझने की आवश्यकता है और वह है उत्तर प्रदेश के आने वाले विधानसभा चुनाव और भाजपा के लिए उनमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश की बढ़ी हुई अहमियत।

जैसाकि स्पष्ट है, तात्कालिक राजनीतिक ज़रूरतों (2022 में उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव और 2024 में लोक सभा चुनाव) की वजह से मोदी सरकार ने कृषि क़ानूनों पर क़दम पीछे खींचा है। ग़ौरतलब है कि इस बार पश्चिमी उत्तर प्रदेश और ब्रज क्षेत्र को बूथ मैनेजमेण्ट के लिए सीधे अमित शाह की निगरानी में रखा गया है। वहाँ बुरा प्रदर्शन अमित शाह और नरेन्द्र मोदी की छवि पर बट्टा लगायेगा। इस वजह से भी भाजपा नेतृत्व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कोई दाँव नहीं लगाना चाह रहा है। राकेश टिकैत अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के कारण कुलक आन्दोलन के ज़रिए भाजपा पर दबाव बना रहा है और कोई ऐसा सौदा चाह रहा है जो उसके लिए राजनीतिक तौर पर फ़ायदेमन्द हो। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि राकेश टिकैत की अपनी बाध्यताएँ भी हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाट आबादी का पिछले कुछ वर्षों में जिस प्रकार व्यवस्थित साम्प्रदायीकरण और फ़ासीवादीकरण किया गया है, उसमें टिकैत बन्धुओं के सामने अन्ततः भाजपा के शरणागत होने या कम-से-कम उससे अच्छे रिश्ते बनाए रखने और संवाद के रास्ते खोले रखने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। इस समय पश्चिमी उत्तर प्रदेश की कुलक जाट आबादी के लिए भाजपा की मुख़ालफ़त करने का केवल एक कारण है: खेती क़ानून। यदि खेती क़ानून वापस हो जाते हैं तो अपने साम्प्रदायीकरण और फ़ासीवादीकरण के कारण इस वोट बैंक के भाजपा के पक्ष में जाने की ज़्यादा सम्भावनाएँ हैं। अब जबकि खेती क़ानून वापस ले लिये गये हैं, तो भाजपा निश्चित ही इस साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को अपने चिर-परिचित तौर-तरीक़ों (साम्प्रदायिक तनाव पैदा करना और छोटे-बड़े दंगे करवाना) से फिर से बढ़ायेगी और जाट वोटों को अपनी ओर खींचेगी। ऐसी सूरत में टिकैत बन्धुओं के पास और कोई रास्ता नहीं होगा कि वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जाट कुलक वर्ग के बीच अपने आधार को बनाये रखने के लिए उसी साम्प्रदायीकरण की बहती गंगा में उसी प्रकार हाथ धोएँ जैसे कि पहले भी धो चुके हैं। अब भाजपा की "मजबूरी" पर आते हैं।

हरियाणा की तरह पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ग़ैर-जाट वोटों की लामबन्दी करने की सम्भावना नहीं है। इसकी वजह है पर्याप्त रूप से बड़ी मुस्लिम आबादी जिसे भाजपा कभी अपने पक्ष में नहीं जीत सकती है और अगर जाट वोट बैंक भी उसके हाथ से खिसक जाता है तो वह जाट-मुस्लिम अन्तरविरोध का फ़ायदा नहीं उठा सकेगी और चुनावों में जीतने का कोई समीकरण नहीं बन सकेगा। इसलिए उनके लिए हरियाणा की तरह पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाट वोट बैंक को नज़रअन्दाज़ करना भारी पड़ सकता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाटों की आबादी 17 प्रतिशत है और इस क्षेत्र में मुस्लिम आबादी 25 प्रतिशत है। हाल ही में भाजपा ने जाट और गुर्जर समुदाय के नेताओं को सम्मानित करके उनका तुष्टीकरण किया था। अलीगढ़ में एक विश्वविद्यालय का नाम बदलकर एक जाट राजा के नाम पर रखा गया है! भाजपा ने कृषि क़ानूनों को रद्द करने के साथ ही इन क़दमों को इसीलिए उठाया है ताकि जाटों के बीच उसके हाल के वर्षों में बने आधार में पड़ी दरारों को पाटा जा सके। और यही ताज़ा घटनाक्रम के पीछे का प्रमुख अन्तरविरोध है। दूसरे शब्दों में, एक बार फिर से दुहरा दें, उत्तर प्रदेश में भाजपा की जीत का रास्ता पश्चिमी उत्तर से होकर जाता है और लोक सभा में भाजपा की जीत का रास्ता उत्तर प्रदेश में जीत से होकर जाता है। अब टिकैत बन्धुओं को भी भाजपा का चुनावों में समर्थन करने या यहाँ तक कि इसके लिए प्रचार करने के लिए तैयार किया जा सकता है। इसके लिए भाजपा उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव से पहले एक बार फिर से पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाटों और मुस्लिमों के बीच साम्प्रदायिक तनाव भड़का सकती है और/या टिकैत बन्धुओं को कुछ अन्य लुभावने विकल्प दे सकती है।

इसलिए भाजपा के लिए पहला विचारणीय पहलू स्पष्ट रूप से पश्चिमी उत्तर प्रदेश और 2022 के उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनावों में जीत पर ख़तरा रहा है जिसकी वजह से 2024 के लोकसभा चुनावों में भी भाजपा की चुनावी मशीनरी पटरी से उतर सकती है। लेकिन केवल यही पहलू नहीं जिसपर भाजपा ने विचार किया।

यह याद रखना चाहिए कि तात्कालिक तौर पर राजनीति निर्धारक होती है, आर्थिक कारक अन्तिम रूप में निर्धारक होते हैं। वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपति वर्ग और खेतिहर पूँजीपति वर्ग शासक वर्ग के ही दो धड़े हैं। शासक ब्लॉक में पूँजीवादी व्यवस्था में आम तौर पर वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपति वर्ग का ही वर्चस्व होता है, लेकिन राज्यसत्ता समूचे पूँजीपति वर्ग के दीर्घकालिक सामूहिक वर्ग हितों की नुमाइन्दगी करती है और इसके लिए उसे यदि समय-समय पर किन्हीं निश्चित धड़ों के हितों को नज़रन्दाज़ भी करना पड़े तो वह करती है, ठीक इसीलिए कि समूचे पूँजीपति वर्ग के हितों और उसके शासन की हिफ़ाज़त की जा सके। यदि शासक वर्ग के ही दो धड़ों के बीच अन्तरविरोध हो, तो उसका समाधान किसी क्रान्ति से तो होता नहीं! आम तौर पर, उसका समाधान चुनावी राजनीति में होता है, किसी प्रकार के शासन-परिवर्तन (यानी शासक वर्ग की पार्टियों की सत्ता में अदला-बदली) के द्वारा या किसी प्रकार के तात्कालिक समझौते के रूप में ही होता है।

इसलिए हम महज़ कोई चुनावी विश्लेषण पेश नहीं कर रहे हैं, बल्कि चुनावी गतिकी के पीछे काम कर रहे वर्गीय राजनीतिक कारकों की पड़ताल कर रहे हैं जो कि चुनावी राजनीति के गणित के समीकरणों में अपने आपको अभिव्यक्त कर रहे हैं। भाजपा का शासन में बने रहना अभी पूँजीपति वर्ग के लिए ज़रूरी है। संकट के दौर में उसे मोदी जैसा "मज़बूत नेता" चाहिए जो कि तानाशाहाना तरीक़े से मेहनतकश अवाम के हक़ छीन सके और उनका दमन कर सके। इसलिए उत्तर प्रदेश चुनावों और फिर लोकसभा चुनावों में भाजपा की जीत भारत के पूँजीपति वर्ग के लिए आम तौर पर आवश्यक है। ऐसा नहीं कि पूँजीपति वर्ग हमेशा जैसा चाहता है, वैसा ही होता है। कई बार पूँजीवादी लोकतंत्र के आपसी अन्तरविरोधों में पूँजीपति वर्ग के अधिकांश धड़ों की रज़ामन्दी वाली बुर्जुआ पार्टी की बजाय कोई दूसरी बुर्जुआ पार्टी जीत जाती है। जैसे कि अमेरिका में ट्रम्प की जीत। लेकिन पूँजीपति वर्ग अपनी ओर से वित्तीय और अपने अन्य संसाधनों के ज़रिए यह सुनिश्चित करने की सतत् कोशिश करता है कि उसके बड़े हिस्से की आपसी सहमति वाली पसन्दीदा बुर्जुआ पार्टी जीते। आज भारत का शासक वर्ग भी व्यापक बहुमत के साथ मोदी के पक्ष में है। इसलिए वह भी नहीं चाहता कि मोदी 2024 में चुनाव हारे। भाजपा नेतृत्व भी समझता है कि 2024 का चुनाव जीतने के लिए, यानी दूरगामी युद्ध जीतने के लिए तात्कालिक लड़ाई के मोर्चे पर पीछे हटने में लाभ है। यह पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बुर्जुआ राजनीति के समीकरण में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। अब जबकि खेती क़ानून वापस लिये जा चुके हैं, तो पश्चिमी

(पेज 10 पर जारी)

धनी किसान-कुलक आन्दोलन के नवीनतम दौर में कुछ ज़रूरी सवाल जिन्हें इस आन्दोलन के नेतृत्व से पूछा जाना चाहिए

– अभिनव

जब हमने धनी किसान-कुलक आन्दोलन के शुरू होते ही कहा था कि इस आन्दोलन का मूल और मुख्य लक्ष्य लाभकारी मूल्य (एमएसपी) को बचाना और बढ़ाना है, तो इस आन्दोलन के पीछे घिसट रहे कई कॉमरेडों ने कहा था कि इस आन्दोलन का लक्ष्य केवल लाभकारी मूल्य बचाना नहीं है, बल्कि यह फ़ासीवाद-विरोधी आन्दोलन है, यह खेतिहर मज़दूरों को भी फ़ायदा पहुँचाएगा और यह ग़रीब किसानों को भी फ़ायदा पहुँचाएगा, वग़ैरह। लेकिन अब जबकि मोदी सरकार ने उत्तर प्रदेश व पंजाब चुनावों के मद्देनज़र तीन खेती क़ानूनों को वापस ले लिया है, तो मौजूदा धनी किसान-कुलक आन्दोलन के नेतृत्व ने स्वयं ही अपने चरित्र को साफ़ कर दिया है। इनका प्रमुख और मूल मसला केवल लाभकारी मूल्य ही है। अब इन किसान संगठनों का कहना है कि वे आन्दोलन तभी समाप्त करेंगे जबकि लाभकारी मूल्य की गारण्टी को सुनिश्चित करने के लिए सरकार इसे क़ानूनी अधिकार बना देगी। ज़ाहिर है, धनी किसान व कुलक वर्ग की यह प्रातिनिधिक माँग है जिसके अनुसार उन्हें बाज़ार स्थितियों में प्रतिस्पर्द्धा से निर्धारित होने वाली औसत क़ीमत से मिलने वाले औसत मुनाफ़े से ऊपर बेशी मुनाफ़ा प्राप्त होना चाहिए। वे अपने लिए यह राजकीय संरक्षण चाहते हैं कि सरकार बाज़ार में हस्ताक्षेप कर उनके लिए औसत मुनाफ़े से ऊपर बेशी मुनाफ़ा सुनिश्चित करने वाली राजकीय इजारेदार क़ीमत को उनका क़ानूनी अधिकार बनाये।

ऐसे में, कुछ सवाल हैं जो कि हम धनी किसान व कुलकों की यूनियनों व संगठनों से पूछना चाहते हैं, जिनका यह दावा है कि वे मज़दूरों व ग़रीब किसानों की भी हितैषी हैं।

1. क्या, वे यह वायदा करेंगे कि जब तक ग़रीब किसानों को सस्ते संस्थाबद्ध ऋण का अधिकार नहीं मिल जाता तब तक वे अपना आन्दोलन जारी रखेंगे? क्या वे यह वायदा करेंगे कि जब तक सरकार गाँवों में न सिर्फ़ सस्ते संस्थाबद्ध ऋण की व्यवस्था नहीं करती बल्कि जब तक वह भयंकर रूप से ऊँची ब्याज़ दरों पर ग़रीब किसानों व भूमिहीन मज़दूरों को अनौपचारिक ऋण देने को यानी सूदख़ोरी को क़ानूनी तौर पर दण्डनीय अपराध नहीं बना देती, तब तक वे अपना आन्दोलन जारी रखेंगे?

2. क्या वे यह वायदा करने को तैयार हैं कि दुनिया के तमाम देशों के समान खेती के क्षेत्र में भी मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी, साप्ताहिक छुट्टी, आठ घण्टे के कार्यदिवस जैसे अधिकार मिलने चाहिए? यदि धनी किसानों-कुलकों को एमएसपी के रूप में ऊँचे दामों का राजकीय संरक्षण चाहिए, तो क्या खेतिहर मज़दूरों को भी न्यूनतम मज़दूरी व अन्य श्रम अधिकारों के ज़रिए राजकीय संरक्षण नहीं मिलना चाहिए? यदि वे अपने पक्ष में सरकार द्वारा बाज़ार में हस्तक्षेप चाहते हैं, तो क्या मज़दूरों के पक्ष में भी बाज़ार में हस्तक्षेप की माँग नहीं की जानी चाहिए? क्योंकि ये किसान यूनियनें तो मज़दूरों की भी हितैषी हैं ना? लेकिन तमाम कुलक व धनी किसान तो वोट डालकर हाल ही में खेतिहर मज़दूरों की मज़दूरी फ़िक्स कर रहे थे! क्या मौजूदा धनी किसान-कुलक आन्दोलन इस प्रकार की हरकत को दण्डनीय अपराध घोषित किये जाने तक आन्दोलन जारी रखने का वायदा करेगा?

3. क्या नवजनवादी क्रान्ति मानने वाले संगठन, जो कि पंजाब में तमाम किसान यूनियनों के नेतृत्व में हैं, वे यह कहने को तैयार हैं कि जब तक भूमि का राष्ट्रीकरण नहीं हो जाता, पुनर्वितरणकारी भूमि सुधार नहीं हो जाते, लैण्ड सीलिंग लागू नहीं की जाती और तमाम सैंकड़ों एकड़ों के मालिक किसानों से ज़मीन ज़ब्त करके दलित खेतिहर मज़दूर आबादी में बाँटी नहीं जाती, तब तक मौजूदा आन्दोलन जारी रहेगा? यह आन्दोलन तो ग़रीब और निम्न मध्यम किसानों का भी है न? यह आन्दोलन तो भूमिहीन मज़दूरों का भी है न? तो फिर ये माँगें आन्दोलन को ख़त्म करने की शर्तें क्यों नहीं बनायी जानी चाहिए? सिर्फ़ लाभकारी मूल्य यानी एमएसपी ही पूर्वशर्त क्यों है? (हमारा ऐसा मानना नहीं है कि पुनर्वितरणकारी भूमि सुधारों से आज खेती की समस्या का कोई समाधान हो सकता है, लेकिन नवजनवादी क्रान्ति मानने वाले तमाम कम्युनिस्ट संगठनों की यूनियनों का तो ऐसा ही मानना है, जो कि मौजूदा धनी किसानों-कुलकों के आन्दोलन की अगुवाई कर रही हैं! इसलिए सवाल तो उनसे बनता ही है!)

4. क्या ये धनी किसान-कुलक संगठन यह वायदा करने को तैयार हैं कि यदि एमएसपी पर मोदी सरकार क़ानूनी गारण्टी देती है, तो वे भी खुले बाज़ार में ऊँची क़ीमतें मिलने पर अपनी उपज खुले बाज़ार में नहीं बल्कि एमएसपी पर सरकार को ही बेचेंगे? क्योंकि उनकी चिन्ता तो देशभर में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को दुरुस्त करने की है न? और उसके लिए ही तो वे एमएसपी को क़ानूनी अधिकार बनाने की माँग कर रहे हैं! उन्हें मुनाफ़े की कोई हवस तो है नहीं! तो ऐसे में एमएसपी के क़ानूनी अधिकार बनने पर क्या इन धनी किसानों-कुलकों की यूनियनों को यह माँग भी नहीं उठानी चाहिए कि एमएसपी से ऊपर बिकवाली करने को भी दण्डनीय अपराध बनाया जाये?

5. क्या धनी किसानों-कुलकों के आन्दोलन को, जो कि उनके अनुसार ग़रीब किसानों का भी तारणहार है, यह माँग नहीं उठानी चाहिए कि सरकार गाँवों में ग़रीब किसानों को खेती में सहायता के लिए अवसंरचना का विकास करे, नहरें बनाये, धनी किसानों समेत समस्त धनी वर्ग पर विशेष कर लगाकर ग़रीब किसानों को रियायती दरों पर खेती के तमाम इनपुट उपलब्ध कराये, और यह कि जब तक ग़रीब किसानों की ये विशिष्ट माँगें पूरी नहीं हो जातीं, तब तक उनका आन्दोलन जारी रहेगा? साथ ही, क्या इन धनी किसानों-कुलकों की यूनियन को मनरेगा का दायरा और मज़दूरी व्यापक करने की माँग नहीं उठानी चाहिए क्योंकि यह गाँव के खेतिहर मज़दूरों के लिए भी एक प्रमुख माँग है, हालाँकि इससे गाँव में औसत खेतिहर मज़दूरी बढ़ेगी? लेकिन धनी किसान व कुलक तो अपने आपको खेतिहर मज़दूरों के पालनहार के तौर पर पेश करते हैं, तो क्या उन्हें खेतिहर मज़दूरों की इस आवश्यक माँग को भी मौजूदा आन्दोलन में उठाना नहीं चाहिए? फिर ये धनी किसान व कुलक केवल एमएसपी को क़ानूनी अधिकार बनाने की धनी किसानों व कुलकों की माँग के पूरे होने तक ही आन्दोलन जारी रखने की बात क्यों कर रहे हैं? उनका आन्दोलन तो समूचे फ़ासीवाद का विरोध करने वाला आन्दोलन था न? तो सारी बात एमएसपी को क़ानूनी अधिकार बनाने पर क्यों सिमट गयी है?

सीधी-सी बात है कि ये धनी किसान-कुलक यूनियनें इन माँगों पर अड़ना तो दूर इन्हें उठायेंगी भी नहीं। वजह यह है कि पूँजीवादी किसान व कुलक होने के नाते यह वर्ग अपने वर्ग हितों की पूर्ति के लिए बड़े औद्योगिक-वित्तीय पूँजीपति वर्ग से कशमकश कर रहा है। ग़रीब किसानों व खेतिहर मज़दूरों की बात इन्हें सिर्फ़ इसलिए करनी पड़ती है क्योंकि उसके बिना इनके आन्दोलन की सामाजिक शक्ति जाती रहेगी और ये गाँव के ग़रीबों के एक हिस्से को अपने आन्दोलन के पीछे नहीं घसीट पायेंगे।

सच्चाई यह है कि गाँवों में ग़रीब किसानों व खेतिहर मज़दूरों को लगान, सूद, वाणिज्यिक मुनाफ़े और उद्यमी मुनाफ़े के तमाम रूपों के ज़रिए ये धनी किसान-कुलक आबादी ही लूटती है और इसी लूटने के अधिकार पर वह अपना एकाधिकार चाहती है और उसे बड़ी पूँजी के साथ किसी भी रूप में साझा नहीं करना चाहती। सारी लड़ाई ही इसी बात की है। साथ ही, वह अपने लिए बेशी मुनाफ़े का विशेषाधिकार चाहती है। किसी को अच्छा लगे या बुरा, सच तो यही है और गाँवों की सच्चाई से परिचित तमाम नरोदवादी, नरोदवादी-कम्युनिस्ट व संशोधनवादी भी इस सच्चाई को जानते हैं, हालाँकि वे इसे कभी स्वीकार नहीं करते क्योंकि इससे धनी किसानों-कुलकों के बीच से मिलने वाला राजनीतिक, वित्तीय व सामाजिक समर्थन मिलना उन्हें बन्द हो जायेगा और पंजाब में तो ऐसे तमाम संगठनों की राजनीति और संगठन का ही भट्ठा बैठ जायेगा!

पूँजीपति कौन होता है? मार्क्स और उनके बाद तमाम महान मार्क्सवादी शिक्षकों ने इसका स्पष्ट जवाब दिया है। पूँजीपति वह होता है जो कि नियमित तौर पर उजरती श्रम का शोषण करता है और यह उजरती श्रम का शोषण और बेशी मूल्य का विनियोजन ही उसकी अर्थव्यवस्था का आधार होता है। क्या धनी किसान व कुलक उजरती श्रम का शोषण करते हैं? हाँ! क्या वे पूँजीवादी किसान हैं? हाँ! क्या वे पूँजीपति वर्ग का हिस्सा हैं? हाँ! बड़े वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपति वर्ग से बेशी मूल्य के विनियोजन में हिस्सेदारी को लेकर चल रहा उनका झगड़ा वैसा ही है जैसा कि पूँजीपति वर्ग के अलग-अलग धड़ों में लगातार ही होता है, कभी नरम तौर पर तो कभी तीखे तौर पर।

खेतिहर मज़दूरों के विषय में धनी किसानों-कुलकों द्वारा कही जाने वाली बातें वे बातें ही हैं जो कि आम तौर पर पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग के बारे में कहता है, मसलन, वह मज़दूरों को रोज़गार देता है, वह उन्हें क़र्ज़ देकर मदद करता है, वह ही नहीं रहेगा तो मज़दूरों को रोज़गार कौन देगा, उन्हें ऋण कौन देगा, वग़ैरह। ऐसी बातें कहते हुए धनी किसान व कुलक अक्सर ही मिल जाते हैं और इस आन्दोलन के दौरान भी ऐसी बातें करते हुए पाये गये थे। यह भाषा ही पूँजीपति वर्ग की भाषा है। अफ़सोस की बात है कि अपने आपको कम्युनिस्ट कहने वाले संगठनों की धनी किसानों-कुलकों की यूनियनें भी ऐसी बातें कहती हैं, उनका समर्थन करती हैं या उन पर चुप रहकर उन्हें मौन समर्थन देती हैं और यह सच्चाई बयान ही नहीं करतीं कि ज़मीन में निजी सम्पत्ति रैडिकल बुर्जुआ मानकों से भी नहीं होनी चाहिए, बल्कि उन मानकों से भी ज़मीन का राष्ट्रीकरण होना चाहिए और दूसरी बात यह कि यह मज़दूर हैं जो पूँजीवादी किसानों को जिलाते और ज़िन्दा रखते हैं, न कि यह पूँजीवादी किसान है जो मज़दूरों को पालता है। मार्क्स ने इस प्रकार के तर्क को तार-तार कर उसके वर्ग चरित्र को प्रदर्शित किया था कि पूँजीपति मज़दूर को पालता है और दिखलाया था कि सच्चाई इसके ठीक विपरीत है: मज़दूर पूँजीपति वर्ग को पालता है।

क्या पूँजीवादी किसानों के साथ सर्वहारा वर्ग का मोर्चा बन सकता है? यदि प्रमुख शत्रु सामन्त और/या साम्राज्यवाद है और सामन्तवाद और/या साम्राज्यवाद बनाम जनता का अन्तरविरोध प्रधान अन्तरविरोध है तो पूँजीवादी किसान भी क्रान्ति के रणनीतिक वर्ग मोर्चे का अंग होता है और क्रान्ति का मित्र वर्ग होता है, हालाँकि माओ ने स्पष्ट किया था कि नवजनवादी क्रान्ति की मंज़िल में भी धनी पूँजीवादी किसान क्रान्ति का ढुलमुल मित्र होता है और नवजनवादी क्रान्ति की मंज़िल में भी सर्वहारा वर्ग अपने नेतृत्व में ग़रीब और मँझोले किसानों पर प्रमुख रूप में निर्भर करता है। लेकिन फिर भी धनी किसान व्यापक तौर पर क्रान्तिकारी वर्ग संश्रय का अंग होता है। जो नवजनवादी क्रान्ति की मंज़िल मानते हैं उनके लिए फिर भी धनी किसानों-कुलकों के आन्दोलन का समर्थन करने की एक वजह है, हालाँकि वे जिस माँग का समर्थन कर रहे हैं वह जनविरोधी है और नवजनवादी क्रान्ति की मंज़िल में भी

(पेज 10 पर जारी)

खेती क़ानूनों की वापसी और मज़दूर वर्ग के लिए इसके मायने

(पेज 8 से आगे)

उत्तर प्रदेश में जाट कुलक आबादी के बीच अपने खोये हुए आधार को फिर से हासिल करना भाजपा के लिए आसान है और ज़्यादा सम्भावना है कि ऐसा होगा भी क्योंकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 'नक़ली दुश्मन' के तौर पर पेश किये जाने के लिए एक बड़ी मुसलमान आबादी मौजूद है, जो कि बाक़ी कुलक दबदबे वाले प्रदेशों जैसे कि पंजाब और हरियाणा में मौजूद नहीं है। पंजाब तात्कालिक तौर पर भाजपा के लिए अपने आप में 2024 के मद्देनज़र उतना महत्व नहीं रखता और हरियाणा में ग़ैर-जाट वोटों की लामबन्दी भाजपा के लिए सम्भव है, जोकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सम्भव नहीं है। खेती क़ानूनों की वापसी के बिना या उसके साथ, भाजपा हरियाणा में अलग प्रकार का समीकरण बना सकती है और पहले भी बना चुकी है। इसलिए भाजपा के लिए कुंजीभूत कड़ी है पश्चिमी उत्तर प्रदेश।

भाजपा के लिए फ़िलहाल गौण लेकिन एक अहम पहलू है पंजाब। वहाँ कृषि क़ानून लाने और फ़ार्मर आन्दोलन के बाद भाजपा की स्थिति राजनीतिक रूप से अछूत जैसी हो गयी है। यह अपने आप में भाजपा के लिए बड़ी चिन्ता का विषय नहीं होता, लेकिन उत्तर प्रदेश चुनावों में सम्भावित हार के साथ मिलकर यह भाजपा के लिए और ज़्यादा नुक़सान की बात बन जायेगी। तीन कृषि क़ानूनों को रद्द करने के बाद पंजाब में राजनीतिक समीकरण कुछ बदल सकते हैं। पंजाब में भाजपा के लिए कैप्टन अमरिन्दर सिंह तुरुप का पत्ता साबित हो सकते हैं जिन्होंने तुरन्त मोदी सरकार को ट्वीट करते हुए लख-लख बधाइयाँ भेजीं! अमरिन्दर सिंह यह बयान देते आये हैं कि वह भाजपा सरकार को कृषि क़ानून रद्द करने के लिए राज़ी करने के प्रयास कर रहे हैं। अब अमरिन्दर सिंह खुले रूप में या पर्दे के पीछे भाजपा के सहयोगी बन सकते हैं क्योंकि अब भाजपा की स्थिति पंजाब में राजनीतिक अछूत वाली नहीं रह जायेगी। (यह सम्पादकीय लिखे जाने के कुछ समय बाद ही अमरिन्दर सिंह ने भाजपा के साथ काम करने का एलान कर दिया है)। अमरिन्दर सिंह जैसे मित्रों की सहायता से पंजाब में भाजपा के लिए बन्द हो चुका दरवाज़ा खुलेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि भाजपा का पंजाब के चुनावों में अच्छा प्रदर्शन होने वाला है। इसकी गुंजाइश बेहद कम है। इसका सिर्फ़ यह अर्थ है कि पंजाब में मौजूद अपने सहयोगियों के ज़रिए भाजपा अपने लिए बन्द हो चुके दरवाज़ों को लम्बी दूरी में खोल सकती है और कम-से-कम उसकी स्थिति अब राजनीतिक अछूत जैसी नहीं रह जायेगी। 23 नवम्बर के अपने भाषण में मोदी ने गुरुपरब के मौक़े पर सिख धर्मग्रन्थ से उद्धृत करके सिखों की धार्मिक भावनाओं का तुष्टिकरण करने की कोशिश की जिसकी निश्चित रूप से किसान आन्दोलन में एक भूमिका थी। इसी मक़सद से 23 नवम्बर के इस एलान के ही दो दिन पहले करतारपुर गलियारे को भी खोल दिया गया था।

संक्षेप में, शासक वर्गों के दो हिस्सों, यानी बड़े औद्योगिक-वित्तीय बुर्जुआ वर्ग और मुख्य कृषि क्षेत्रों में खेतिहर बुर्जुआ वर्ग, के बीच जारी आन्तरिक वर्गीय अन्तरविरोध में खेतिहर बुर्जुआ वर्ग पहले दौर में कम से कम तात्कालिक रूप से विजयी हुआ है। सत्तासीन पार्टी की तात्कालिक राजनीतिक ज़रूरतें इस निर्णय का कारण रही हैं। बुनियादी तौर पर देखें तो इसका एक अन्य कारण भी है: आर्थिक शक्तिमत्ता में वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपति वर्ग से कहीं पीछे होने के बावजूद, खेतिहर पूँजीपति वर्ग की राजनीतिक व सामाजिक शक्तिमत्ता और हनक पर्याप्त है। गाँव के वोट बैंक का निर्धारण अक्सर उसी के नेतृत्व में होता है क्योंकि खेतिहर मज़दूरों के बड़े हिस्से और ग़रीब व मँझोली किसान आबादी राजनीतिक चेतना के अभाव में उसके पीछे-पीछे चलती है। इसलिए खेतिहर व ग्रामीण आबादी में अपने आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक वर्चस्व के कारण धनी किसान व कुलक वर्ग का राजनीतिक वज़न बुर्जुआ राजनीति में फ़िलहाल उसके आर्थिक वज़न की तुलना या अनुपात में कहीं ज़्यादा है। मार्क्स ने बताया है कि राजनीतिक कारक (राजनीतिक वर्ग अन्तरविरोध) तात्कालिक तौर पर इतिहास की प्रेरक शक्ति होते हैं, जबकि आर्थिक कारक बुनियादी कारक होते हैं जो कि अन्ततः निर्धारक भूमिका निभाते हैं। यहाँ भी खेतिहर पूँजीपति वर्ग का भारत की चुनावी पूँजीवादी राजनीति में दख़ल और उसका वज़न तात्कालिक तौर पर निर्धारक कारक सिद्ध हुआ है। हमने खेती क़ानूनों पर शुरू हुए आन्दोलन के तुरन्त बाद 'मज़दूर बिगुल' में एक लेख में इस सम्भावना की ओर इशारा भी किया था।

इसकी वजह से फ़िलहाल कृषि क्षेत्र में विनियोजित अधिशेष की हिस्सेदारी फ़िलहाल खेतिहर बुर्जुआ के के पक्ष में ही बनी रहेगी और इससे निश्चित ही उसे फ़ायदा होगा; जबकि औद्योगिक-वित्तीय बुर्जुआ वर्ग को धनी पूँजीवादी किसानों और कुलकों को इजारेदार लगान देने वाले एमएसपी के तंत्र, जिसकी वजह से मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा होता है जिससे उनकी पहले से ही गिर रही मुनाफ़े की दर और नीचे जाती है, को ध्वस्त करने के लिए किसी अन्य उपयुक्त अवसर की तलाश करनी होगी। कृषि क़ानूनों के रद्द होने से एक बार फिर मार्क्सवाद-लेनिनवाद की यह बुनियादी शिक्षा सही साबित होती है राजनीति ही निर्णायक होती है!

कृषि क़ानूनों के रद्द होने के बाद क़रीब 10 करोड़ छोटे और सीमान्त किसानों तथा 15 करोड़ खेतिहर मज़दूरों के जीवन में कोई बदलाव नहीं आने वाला है। कृषि क़ानूनों के लागू होने के बाद भी उसमें कोई बदलाव नहीं आता, होता बस यह कि उनके श्रम की लूट का बड़ा हिस्सा कालान्तर में औद्योगिक-वित्तीय बुर्जुआ के पास जाता और धनी किसानों और कुलकों को लूट के छोटे हिस्से से ही सन्तोष करना पड़ता और एमएसपी के तंत्र का ख़ात्मा हो जाता।

मज़दूर वर्ग और ग़रीब किसानों का कार्यभार बड़ी वित्तीय-औद्योगिक बुर्जुआज़ी और धनी कुलकों व पूँजीवादी किसानों दोनों का विरोध करने का है क्योंकि दोनों ही कृषि क्षेत्र में विनियोजित होने वाले बेशी मूल्य में बड़ा हिस्सा हासिल करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जो मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी की लूट से ही पैदा होता है। आज पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश आबादी का मित्र नहीं है। रणकौशलात्मक तौर पर भी सर्वहारा वर्ग छोटे या मँझोले पूँजीपति वर्ग के किसी धड़े के साथ बड़े पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध मोर्चा नहीं बना सकता क्योंकि पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश आबादी की माँगों को स्वीकार नहीं करेगा। क्या खेतिहर पूँजीपति वर्ग खेतिहर मज़दूरों के लिए श्रम क़ानूनों को लागू करने को तैयार है? क्या वह आठ घण्टे के कार्यदिवस समेत सभी श्रम अधिकार अपने उजरती मज़दूरों को देने को तैयार है? क्या वह उनके लिए न्यूनतम मज़दूरी लागू करवाने को तैयार है? क्या वह ग़रीब किसानों के लिए सस्ते सरकारी संस्थाबद्ध ऋण और धनी किसानों समेत समूचे पूँजीपति वर्ग पर विशेष कर लगाकर ग़रीब किसानों के लिए खेती के इनपुट सस्ती दरों पर मुहैया कराने की माँग रखने को तैयार है? नहीं! यानी यह खेतिहर पूँजीपति वर्ग आम मेहनतकश जनता का समर्थन चाहता है लेकिन उसकी किसी भी माँग को स्वीकार करने को तैयार नहीं है! ऐसे में, कोई रणकौशलात्मक मोर्चा भी नहीं बन सकता है।

निश्चय ही एमएसपी का तंत्र जन-विरोधी है क्योंकि इसकी वजह से समूची कामगार आबादी की मज़दूरी में कटौती होती है क्योंकि एमएसपी की वजह से मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा होने की परिणति हमेशा बढ़ी हुई मज़दूरी के रूप में नहीं हासिल होती है। मज़दूर वर्ग और ग़रीब किसानों को एमएसपी, जो भारत के मज़दूर वर्ग की क़ीमत पर और साथ ही साथ औद्योगिक पूँजीपति वर्ग के उद्यमशील मुनाफ़े की क़ीमत पर खेतिहर पूँजीपति वर्ग का बेशी मुनाफ़ा सुनिश्चित करने वाला इजारेदार लगान है, का समर्थन महज़ इसलिए नहीं करना चाहिए क्योंकि औद्योगिक-वित्तीय बड़ा बुर्जुआ वर्ग अपने कारणों से एमएसपी का विरोध कर रहा है।

मज़दूर वर्ग की अपनी राजनीतिक रूप से स्वतंत्र अवस्थिति होगी, यानी सापेक्षत: छोटे खेतिहर पूँजीपति वर्ग का पिछलग्गू बने बिना औद्योगिक-वित्तीय बड़े पूँजीपति वर्ग का विरोध करना और मज़दूर वर्ग के शोषण से पैदा होने वाले विनियोजित बेशी मूल्य में बन्दरबाँट के लिए झगड़ रहे पूँजीपति वर्ग के दोनों ही धड़ों का विरोध करना और अपनी विचारधारा व स्वतंत्र राजनीति के साथ अपना स्वतंत्र माँगपत्रक प्रस्तुत करना होगा। यही वह कार्यभार है जो आज भारत के मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनसमुदायों के समक्ष है।

धनी किसान-कुलक आन्दोलन के नेतृत्व से कुछ ज़रूरी सवाल

(पेज 9 से आगे)

सर्वहारा वर्ग राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी किसानों की आम तौर पर जनविरोधी माँगों का समर्थन करने को बाध्य नहीं होता। लेकिन समाजवादी क्रान्ति की बात करने वाले कुछ ग्रुप यदि इस आन्दोलन का समर्थन कर रहे हैं तो यह मज़दूर वर्ग से विश्वासघात और दक्षिणपन्थी भटकाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यहाँ तक कि नवजनवादी क्रान्ति मानने वालों के लिए भी एक अतिरिक्त समस्या है। समस्या यह है कि इन्हीं धनी किसानों-कुलकों को अपनी मनमर्ज़ी से जब चाहे वे सामन्त क़रार दे देते हैं! मसलन, जब वे भूमिहीन मज़दूरों को भूमि के पुनर्वितरण की बात करते हैं, तो इन धनी किसानों-कुलकों को ही सामन्त क़रार दे दिया जाता है क्योंकि गाँवों में और कोई उन्हें दिखता नहीं! और जब ये धनी किसान-कुलक एमएसपी के लिए लड़ते हैं, तो उन्हें क्रान्ति का मित्र धनी किसान क़रार दे दिया जाता है! लेकिन तब सवाल पैदा होता है कि उस समय सामन्त कौन होता है!? इससे पैदा होने वाले भ्रम के चलते कई नवजनवादी क्रान्ति के ईमानदार पैरोकार व समर्थक चिराग़ लेकर गाँवों में सामन्तों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुँह के दाँत और पेट की आँत खो बैठे हैं!

इसके बाद कुछ एकदम ही बेशर्म लोग हैं, जो कहते हैं कि भारत में कोई धनी किसान ही नहीं है! अव्वलन तो राजनीतिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से ही यह मूर्खतापूर्ण बात है। लेकिन इस झूठ की अश्लीलता को कोई भी पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश व तमाम प्रमुख कृषि उत्पादक राज्यों के गाँवों में घूमकर समझ सकता है। कोई पिछले एक वर्ष के दौरान सिंघू व टीकरी बॉर्डर पर ही दो-चार बार घूम लेता तो उसे इस लफ़्फ़ाज़ बात की गहराई का पता चल जाता। ऐसे लबारों से तो बात करने का भी कोई अर्थ नहीं है। वह गाँवों के वर्ग विभाजन और विशेष तौर पर किसानों के तीव्र वर्ग विभेदीकरण की सच्चाई पर पर्दा डालने का प्रयास कर रहा है और वर्ग सहयोगवाद के सबसे घटिया संस्करण की फेरी लगा रहा है।

बहरहाल, जो भी ईमानदार कम्युनिस्ट हैं, उन्हें धनी किसान-कुलक आन्दोलन के नेतृत्व से उपरोक्त प्रश्न पूछने चाहिए। यदि उपरोक्त माँगों को आन्दोलन वापस लेने की पूर्वशर्त बनाने से धनी किसान-कुलक आन्दोलन का नेतृत्व इन्कार करता है, तो मानना पड़ेगा कि इस आन्दोलन का खेतिहर मज़दूरों, परिधिगत, छोटे व निम्न-मध्यम किसानों से कोई सरोकार नहीं है और उनके सरोकारों की बात करना महज़ इस धनी किसान-कुलक आन्दोलन के नेतृत्व की लफ़्फ़ाज़ी थी ताकि गाँव के ग़रीबों को अपने आन्दोलन की भीड़ बनाया जा सके। वास्तव में, सिंघू और टीकरी बॉर्डर पर मरने वाले किसानों में अधिकांश ग़रीब किसान ही थे। इसी प्रकार से तमाम कम्युनिस्ट संगठनों ने गाँव के ग़रीबों को धनी किसानों की बारात में अब्दुल्ला दीवाना बनाने का कुकर्म किया और इसकी क़ीमत भी सबसे ज़्यादा ग़रीब किसानों ने चुकायी, दर्जनों हेक्टेयर वाले धनी किसानों ने नहीं, हालाँकि पूरा आन्दोलन ही उनकी एमएसपी की माँग के लिए ही हो रहा है, जैसा कि अब पूरी तरह साफ़ हो चुका है और कोई आँखों और अक्ल दोनों का ही अन्धा इस बात से इन्कार कर सकता है।

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

– सनी

हर वर्ग का राजनीतिक प्रतिनिधित्व उसकी राजनीतिक पार्टी या पार्टियाँ करती हैं। भारत में तमाम पार्टियाँ मौजूद हैं जो अलग-अलग वर्ग का समर्थन करती हैं या शासक वर्ग के किसी हिस्से के हितों की हिफ़ाज़त करती हैं। भाजपा और कांग्रेस मूलत: और मुख्यत: बड़े पूँजीपतियों के वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये दोनों पार्टियाँ भारत की बड़ी वित्तीय-औद्योगिक पूँजी के हितों को प्रमुखता से उठाती हैं।

वहीं तृणमूल कांग्रेस, राजद, जदयू, अन्नाद्रमुक और द्रमुक से लेकर तमाम पार्टियाँ मँझोले व क्षेत्रीय बुर्जुआ वर्ग और/या धनी किसानों-कुलकों की प्रतिनिधि हैं, जो कि बड़े पूँजीपति वर्ग से देशभर में विनियोजित हो रहे बेशी मूल्य में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने की जद्दोजहद करते रहते हैं। लेकिन ये अपेक्षाकृत छोटी पूँजीवादी पार्टियाँ तथा क्षेत्रीय दल भी जब मौक़ा मिले बड़े पूँजीपति वर्ग की सेवा करने का मौक़ा नहीं चूकते हैं। संशोधनवादी पार्टियाँ, यानी नाम से 'कम्युनिस्ट' लेकिन वास्तव में पूँजीपति वर्ग की सेवा करने वाली पार्टियाँ जैसे कि माकपा, भाकपा, भाकपा (माले) लिबरेशन, एसयूसीआई आदि आम तौर पर छोटे और मँझोले पूँजीपति वर्ग, खेतिहर पूँजीपति वर्ग और छोटे व मँझोले व्यापारियों की सेवा करती हैं और बड़े पूँजीपति वर्ग के कान में 'धीरे चलो-धीरे चलो' का मंत्र फूँकती रहती हैं, ताकि समूची पूँजीवादी व्यवस्था सुरक्षित रहे। ये सारी पार्टियाँ पूँजीपति वर्ग के अलग-अलग हिस्सों की नुमाइन्दगी करती हैं।

पूँजीपति वर्ग की प्रकृति और चरित्र ही ऐसा होता है कि उन्हें अपनी कई राजनीतिक पार्टियों की आवश्यकता होती है। कारण यह है कि इसके अलग-अलग धड़े स्वयं आपस में प्रतिस्पर्द्धा करते हैं और यह प्रतिस्पर्द्धा ही उन्हें एक वर्ग के रूप में बनाती है। इसीलिए मार्क्स ने कहा था कि पूँजीपति वर्ग का दुश्मनाना भाईचारा बाज़ार में प्रतिस्पर्द्धा के ज़रिए पैदा होता है। दुश्मनाना इसलिए क्योंकि पूँजीपति एक दूसरे से गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा में संलग्न होते हैं और भाईचारा इसलिए क्योंकि वे मिलकर सर्वहारा वर्ग का शोषण करते हैं और लूट के माल में अपनी पूँजी के अनुसार हिस्सेदारी करते हैं। पूँजीपति वर्ग की कई पार्टियाँ होने का दूसरा कारण यह है कि चूँकि पूँजीपति वर्ग का शासन पूँजीपति वर्ग और उसके चाकर वर्गों (मसलन शहरी और ग्रामीण उच्च मध्य वर्ग) के लिए 'जनवाद' होता है, लेकिन व्यापक मेहनतकश जनता के लिए पूँजीवादी तानाशाही, इसलिए उसे कई मुखौटों की आवश्यकता होती है, जिन्हें हर पाँच, दस या पन्द्रह वर्षों पर बदलने की आवश्यकता पड़ती है। जब किसी एक मुखौटे के प्रति जनता का असन्तोष और सब्र का प्याला छलकने लगता है, तो किसी दूसरे मुखौटे को आगे कर दिया जाता है।

हर पूँजीवादी दल धर्म, क्षेत्र, भाषा या जाति के नाम पर जनता को बाँटकर बुर्जुआ वर्ग की सेवा करता है। अकाली दल से लेकर चौटाला की इनेलो तक मुख्य तौर पर स्थानीय पूँजीपति वर्ग व धनी किसानों का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टियाँ हैं। जैसा कि हमने ऊपर बताया, नक़ली संशोधनवादी पार्टियाँ बुर्जुआ वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। यह मुख्यत: **छोटे पूँजीपति वर्ग, बड़े और मँझोले किसानों, मँझोले व छोटे व्यापारियों और संगठित क्षेत्र में काम करने वाले उच्च श्रेणी के पक्के कर्मचारियों के वर्ग के एक हिस्से (जो कि कुलीन मज़दूर वर्ग में तब्दील हो चुका है) की सेवा करती हैं।** ये पार्टियाँ आज कांग्रेस और भाजपा की तरह चवन्निया मेम्बरशिप वाली पार्टियाँ ही हैं।

मज़दूर वर्ग की अपनी पार्टी होती है लेकिन वह पूँजीपति वर्ग की पार्टियों-सरीखी नहीं होती है। यह मज़दूर वर्ग की विचारधारा यानी मार्क्सवादी विज्ञान और दर्शन पर आधारित होती है और यही इसका क़ुतुबनुमा होता है और इसे दिशा दिखलाती है। मार्क्सवाद की वैज्ञानिक विचारधारा व उसूलों की रोशनी में और क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू करके ही मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी अपनी राजनीतिक दिशा व कार्यक्रम तय करती है।

क्रान्तिकारी जनदिशा का अर्थ है व्यापक मेहनतकश जनता के बीच बिखरे अविकसित, अकेन्द्रित, असंगठित सही विचारों को इकट्ठा करना, उनके बुनियादी तत्वों को पकड़ना और उनका सामान्यीकरण करके एक सही राजनीतिक कार्यदिशा निकालना और फिर उसके सहीपन को भी वापस जनता के बीच लागू करके ही जाँचना और इसी प्रक्रिया में उसकी कमियों को दूर करके उसे विकसित करते जाना।

राजनीतिक कार्यदिशा का क्या अर्थ है? राजनीतिक कार्यदिशा का अर्थ है किसी भी सामाजिक स्थिति में मज़दूर वर्ग के हितों के मद्देनज़र उसके व्यवहार की एक आम दिशा। दूसरे शब्दों में, किसी भी राजनीतिक-सामाजिक स्थिति में वर्ग संघर्ष और राज्यसत्ता के प्रश्न पर सर्वहारा वर्ग की आम पहुँच और नज़रिया और कार्यों की आम दिशा। सही राजनीतिक कार्यदिशा के निर्धारण के लिए मज़दूर वर्ग की पार्टी मार्क्सवादी विज्ञान और उसूलों की रोशनी में (जो कि स्वयं सामाजिक व्यवहार के अनुभवों का ही सामान्यीकरण और समाहार है) क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू कर सही विचारों को पहचानती है और उनका सामान्यीकरण करती है। केवल मार्क्सवादी विज्ञान, उसूलों व राजनीतिक कार्यदिशा और कार्यक्रम के आधार पर ही कोई पार्टी सर्वहारा वर्ग के हिरावल की भूमिका निभा सकती है और अपने समय के राजनीतिक कार्यभारों को पूरा कर सकती है। केवल ऐसी पार्टी के नेतृत्व में ही सर्वहारा वर्ग एक राजनीतिक वर्ग बन सकता है, यानी एक ऐसा वर्ग जिसका लक्ष्य राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना और अपनी राज्यसत्ता स्थापित करना होता है।

मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी का ढाँचा ट्रेड यूनियन सरीखा नहीं होता, बल्कि इस्पाती अनुशासन वाला और काडर-आधारित होता है। पार्टी की सदस्यता पर लेनिन की उक्ति 'कम लेकिन बेहतर' लागू होती है, जिसके अनुसार, हर हड़ताल करने वाले मज़दूर को पार्टी की सदस्यता नहीं दी जाती। मज़दूर वर्ग के उन्नत हिस्से को, जो कि राजनीतिक सवाल, यानी राज्यसत्ता का सवाल उठाने की क्षमता रखता है या विकसित कर लेता है, महज़ आर्थिक माँगों के गोल चक्कर से आगे जाकर पूरी व्यवस्था और सत्ता का प्रश्न उठाने लगता है, और जो एक वैज्ञानिक नज़रिए को अपना लेता है, केवल वही पार्टी की सदस्यता हासिल कर सकता है। इसके अलावा, मज़दूरों की व्यापक आबादी पार्टी के पूँजीवाद-विरोधी समाजवादी कार्यक्रम को स्वीकार कर उससे अलग-अलग स्तरों पर जुड़ सकती है। ऐसे मज़दूरों को हम 'समाजवादी' मज़दूर कह सकते हैं। अपने समय में लेनिन ने ऐसे ही मज़दूरों को 'सामाजिक-जनवादी' मज़दूर कहा था, क्योंकि तब यह शब्द समाजवादी के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता था।

मज़दूर वर्ग की पहली पार्टियों के प्रयोग यूरोप में उन्नीसवीं सदी के दूसरे हिस्से में हुए थे। श्रम और पूँजी के ऐतिहासिक महासमर में सर्वहारा क्रान्तियों के तीन मील के पत्थर पेरिस कम्यून, रूसी क्रान्ति और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति हैं। इस ऐतिहासिक यात्रा में पार्टी की अवधारणा और उसके ढाँचे की समझ में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये। इसके ढाँचे पर व्यवस्थित रूप से पहली बार लेनिन ने लिखा और बताया कि किस प्रकार की सर्वहारा पार्टी पूँजीवादी राज्यसत्ता से निपटने और अन्तत: उसका ध्वंस कर समाजवादी समाज की नींव रखने की क्षमता रख सकती है। लेनिन की इसी समझदारी पर बोल्शेविक पार्टी 1902 से लेकर 1913 के बीच ठोस रूप ग्रहण करती गयी और जिन उसूलों पर यह पार्टी बनी और मज़बूत हुई, उन्हीं को आगे पार्टी संगठन के बोल्शेविक उसूल कहा गया। हम कुछ नुक़्तों में मज़दूर वर्ग की पार्टी की मुख्य चारित्रिक अभिलाक्षणिकताओं पर बात करेंगे। मसलन पार्टी की विचारधारा क्या है? पार्टी का लक्ष्य क्या है? पार्टी का मज़दूर वर्ग से कैसा सम्बन्ध है? पार्टी का प्रचार कैसा हो? पार्टी का स्वरूप और उसका ढाँचा क्या है?

आज विघटन और निराशा के दौर में तमाम अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी संगठन तथा धुरीविहीन बुद्धिजीवी सोवियत रूस और समाजवादी चीन में समाजवाद के पतन के लिए पार्टी की अवधारणा को ही ज़िम्मेदार ठहरा रहे हैं। तो दूसरी ओर तमाम संशोधनवादी पार्टियाँ अपने मूल चरित्र में बुर्जुआ पार्टी होते हुए मज़दूर वर्ग के समक्ष ख़ुद को मज़दूर वर्ग की पार्टी के रूप में पेश करती हैं और मज़दूर वर्ग को बरगलाती हैं। दोनों ही छोर पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा को बदनाम करते हैं। इसलिए लेनिनवादी पार्टी की अवधारणा के बुनियादी पहलुओं को आज समझना बहुत ज़रूरी है।

मज़दूर वर्ग की पार्टी सर्वहारा वर्ग का हिरावल होती है

मज़दूर वर्ग की पार्टी मज़दूर वर्ग का अगुआ दस्ता होती है। यह मज़दूर वर्ग को नेतृत्व देती है। यह वर्ग संघर्ष का उत्पाद भी है और दूसरी ओर उसे संचालित करने का उपकरण भी होती है। हिरावल होने का अर्थ है मज़दूर वर्ग के उन्नत हिस्से द्वारा मज़दूर वर्ग को नेतृत्व देना। पार्टी का वर्ग चरित्र सर्वहारा होता है। पार्टी स्वयं लेनिन के शब्दों में सर्वहारा वर्ग के उन्नत तत्वों को आत्मसात करती है और सर्वहारा वर्ग का अगुआ दस्ता होती है।

हर वर्ग के मुख्यत: तीन अंग होते हैं: उन्नत हिस्सा, मध्यवर्ती हिस्सा और पिछड़ा हुआ हिस्सा। सर्वहारा वर्ग भी मौजूदा पूँजीवादी समाज में पूँजीपति वर्ग द्वारा थोप दी गयी आपसी प्रतिस्पर्द्धा के कारण पूँजीवादी और निम्न-पूँजीवादी विचारधारा का शिकार होता है; क्षेत्रीय, भाषाई, जातिगत, जेण्डरगत अन्तर के कारण एक वर्ग समाज में उनके भीतर आपसी अन्तरविरोध होते हैं; पेशागत व सेक्टरगत अन्तरों के कारण, कुशल व अकुशल श्रम के अन्तर के कारण, मानसिक व शारीरिक श्रम के बीच अन्तर के कारण और इसी प्रकार की अन्य अन्तरवैयक्तिक असमानताओं के कारण मज़दूर वर्ग कई संस्तरों में विभाजित होता है। विभिन्न कारकों के मिश्रित प्रभाव के कारण हर जगह ही मज़दूर वर्ग के कुछ उन्नत तत्व होते हैं जो उन्नत राजनीतिक चेतना रखते हैं, केवल वेतन-भत्तों की लड़ाई से उन्हें सन्तोष नहीं होता, वे केवल एक मालिक को नहीं बल्कि मालिकों के पूरे वर्ग और उस वर्ग की पूँजीवादी सत्ता को दुश्मन के तौर पर देखते हैं। इसके बाद का हिस्सा मध्यवर्ती तत्वों का होता है जो इस प्रकार की राजनीतिक चेतना को अपेक्षाकृत तेज़ी से अर्जित करने की क्षमता और सम्भावनासम्पन्नता रखते हैं। और अन्त में पिछड़ा हिस्सा होता है जिसमें राजनीतिक चेतना का अभाव होता है, और उसे राजनीतिक वर्ग चेतना हासिल करने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। सर्वहारा वर्ग की पार्टी वास्तव में सर्वहारा वर्ग के अग्रिम तत्वों को आत्मसात करती है और यह हिरावल पार्टी सर्वहारा वर्ग के अपेक्षाकृत पिछड़े हिस्सों को नेतृत्व देती है, उनकी राजनीतिक चेतना को उन्नत करती है, उनका राजनीतिक और विचारधारात्मक शिक्षण करती है और उनके रोज़मर्रा के संघर्षों में उन्हें नेतृत्व देती है और इस प्रक्रिया में उन्हें पूँजीवाद-विरोधी बनाती है और साथ ही उन्हें समाजवाद की ज़रूरत पर सहमत करती है, यानी समाजवादी कार्यक्रम का हामी बनाती है। इसके अलावा, सर्वहारा वर्ग की पार्टी समूचे मेहनतकश जनसमुदायों के विभिन्न वर्गों के साथ सर्वहारा वर्ग का मोर्चा स्थापित करती है और उस मोर्चे का नेतृत्व करने में सर्वहारा वर्ग को सक्षम बनाती है।

मज़दूरों के महान नेता मार्क्स ने कहा था कि कम्युनिस्ट मज़दूर वर्ग के तात्कालिक ही नहीं बल्कि दूरगामी तथा केवल एक क्षेत्र या एक राष्ट्र के मज़दूरों के नहीं बल्कि पूरे देश और पूरी दुनिया के मज़दूरों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी अकेले क्रान्ति नहीं करती और न ही मज़दूर वर्ग अकेले क्रान्ति करता है। कम्युनिस्ट पार्टी मज़दूर वर्ग के सबसे उन्नत तत्वों का दस्ता होती है और उनके ज़रिए ही वह समूचे मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता का नेतृत्व करती है। उसकी शक्ति आम मेहनतकश जनता ही होती है। आम मेहनतकश जनता का नेतृत्व सर्वहारा वर्ग करता है। यह याद रखना ज़रूरी है कि सर्वहारा वर्ग अकेले इतिहास नहीं बनाता, बल्कि जनता इतिहास बनाती है। आम जनता (जिसमें आज के दौर में मज़दूर वर्ग, ग़रीब व मँझोले किसान, शहरी व ग्रामीण निम्न मध्यवर्ग शामिल हैं) के बीच पूँजीपति वर्ग अपनी विचारधारा और राजनीति का दबदबा स्थापित करके सर्वहारा वर्ग से अलग-थलग करने के लिए सतत् प्रयासरत रहता है और जनसमुदायों को उस शक्ति से वंचित करता है जिससे कि वह पूँजीवादी राज्यसत्ता को उखाड़कर फेंक सकें, ताकि उसकी तानाशाही, यानी पूँजीवादी राज्यसत्ता को क़ायम रखा जा सके। कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग आम जनता के बीच अपनी विचारधारा और राजनीति को स्थापित कर उन्हें पूँजीवाद की असलियत से वाक़िफ़ करने और उन्हें पूँजीवाद के विरुद्ध संगठित करने के लिए संघर्ष करता है। जनता के बीच जिस वर्ग की विचारधारा और राजनीति अन्तत: प्रभुत्व स्थापित करती है, वही वर्ग इस संघर्ष में विजयी होता है। सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच राजनीतिक वर्ग संघर्ष का असली मसला ही यही होता है।

जनता स्वयं अपने से भी पूँजीवाद के विरुद्ध बेरोज़गारी, ग़रीबी, आदि से तंग आकर बीच-बीच में विद्रोह कर सकती है, लेकिन अगर उसके बीच सर्वहारा वर्ग की विचारधारा, राजनीति और नेतृत्व का प्रभुत्व नहीं होगा, तो वह पूँजीवादी व्यवस्था को बदल नहीं सकती। लेकिन सर्वहारा वर्ग भी अकेले पूँजीवादी व्यवस्था को बदल नहीं सकता। उसे अपनी राजनीति और विचारधारा के वर्चस्व को जनसमुदायों में स्थापित कर जनसमुदायों की शक्ति को पूँजीवादी

(पेज 12 पर जारी)

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(पेज 11 से आगे)

व्यवस्था के विरुद्ध मोड़ना होता है। इसलिए सर्वहारा वर्ग अपनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जनसमुदायों के बीच क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू करता है, जनता के बीच अविकसित, बिखरे हुए और अधूरे सही विचारों को एकत्र करता है, उसे मार्क्सवादी विज्ञान और उसूलों की रोशनी में विकसित करता है, उसे केन्द्रित करता है और उसे पूर्ण बनाता है और इस प्रक्रिया में वह अपनी सर्वहारा राजनीतिक कार्यदिशा को विकसित करता है और फिर इसी राजनीतिक लाइन के ज़रिए वह जनसमुदायों को नेतृत्व देता है। यह एक सतत् प्रक्रिया होती है जो लगातार जारी रहती है।

इस प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी मज़दूर वर्ग का हिरावल बनने के साथ समूची मेहनतकश जनता का क्रान्तिकारी केन्द्र या कोर भी बन जाती है और केवल तभी वह पूँजीवादी व्यवस्था और उसकी राज्यसत्ता के विरुद्ध समाजवादी क्रान्ति कर सकती है।

कम्युनिस्ट निजी सम्पत्ति का विलोप चाहते हैं। वे पूँजी का रूप ग्रहण किये हुए उत्पादन के साधनों का समाजीकरण कर इसे अंजाम देते हैं। इस ऐतिहासिक लक्ष्य को इंगित करने का काम कार्ल मार्क्स और उनके साथी फ्रेडरिक एंगेल्स ने किया। उन्होंने वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्त को रचा तथा यह बताया कि इतिहास के विकासक्रम में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना किसी की सदिच्छा का प्रश्न नहीं बल्कि इतिहास का अगला पड़ाव है। उन्होंने ही बताया कि पूँजीपति वर्ग सर्वहारा वर्ग को लूटता है जिसका आधार बेशी मूल्य होता है। उन्होंने बेशी मूल्य की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए पूँजीवादी शोषण के घृणित व क्षुद्र रहस्य को उजागर किया और बताया कि मज़दूर अपने कार्यदिवस का केवल एक हिस्सा अपने लिए काम करता है और अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है और बाक़ी हिस्से में वह पूँजीपति के लिए अतिरिक्त मूल्य या बेशी मूल्य पैदा करता है। मज़दूरी स्वयं और कुछ नहीं बल्कि मज़दूर के काम करने की ताक़त यानी श्रमशक्ति के मूल्य का ही एक परिवर्तित रूप होती है। यानी मज़दूर को काम करने के बदले केवल जीने की ख़ुराक मिलती है और बाक़ी समय वह मुफ़्त में पूँजीपति का मुनाफ़ा पैदा करता है और यही पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े का स्रोत होता है। मार्क्स व एंगेल्स ने समूचे मानव समाज के गति के विज्ञान के रूप में ऐतिहासिक भौतिकवाद और सर्वहारा वर्ग के दर्शन के रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की स्थापना की, जो कि सामाजिक व्यवहार के समस्त अनुभवों का और साथ ही प्राकृतिक विज्ञान की खोजों के समाहार के आधार पर निकाला गया एक विश्व-दृष्टिकोण है, यानी पूरी दुनिया को देखने का नज़रिया है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार इहलोक यानी कि यह समूचा भौतिक यथार्थ ही अस्तित्वमान है और वास्तविक है और यह लगातार अपने अन्दरूनी अन्तरविरोधों के कारण लगातार बदलता रहता है। मार्क्स और एंगेल्स की इन बुनियादी शिक्षाओं को ही कुल मिलाकर मार्क्सवाद कहते हैं।

मार्क्सवाद कर्मों का मार्गदर्शक विज्ञान है जो सामाजिक व्यवहार और उसके अनुभवों के सतत् सामान्यीकरण और फिर उसके नतीजों के आधार पर उन्नत सामाजिक व्यवहार की सतत् प्रक्रिया में ऊँचे से ऊँचा होता जाता है।

लेनिन ने जहाँ एक तरफ़ मज़दूर वर्ग की हिरावल पार्टी की अवधारणा रखी तो वहीं दूसरी ओर साम्राज्यवाद के दौर में मार्क्सवादी विज्ञान में इज़ाफ़ा किया। वहीं माओ ने क्रान्तिकारी जनदिशा की अवधारणा और समाजवादी संक्रमण काल की समझदारी को महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के उसूल के रूप में रखा।

कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी दर्शन और विज्ञान की रोशनी में सर्वहारा वर्ग को उसके ऐतिहासिक लक्ष्य से परिचित कराती है, उसे जागृत, गोलबन्द और संगठित करती है। लेनिन ने कहा है कि कम्युनिस्ट पार्टी क्रान्तिकारी मार्क्सवाद का कार्यशील स्कूल होती है। मज़दूर वर्ग का हिरावल दस्ता होने के नाते पार्टी का काम इस ऐतिहासिक लक्ष्य की प्राप्ति के संघर्ष में सर्वहारा वर्ग व समस्त मेहनतकश जनता को नेतृत्व देना होता है। पूँजी और श्रम के ऐतिहासिक महासमर में श्रम के शिविर का सेनापतित्व सर्वहारा वर्ग की पार्टी करती है। इसकी पहली मंज़िल पूँजीवादी राज्यसत्ता को उखाड़कर उसकी जगह सर्वहारा वर्ग की तानाशाही स्थापित करना है यानी एक समाजवादी राज्य स्थापित करना। समाजवादी व्यवस्था व राज्यसत्ता की स्थापना के बाद सर्वहारा वर्ग की हिरावल पार्टी का कार्यभार होता है मज़दूर वर्ग के राजकाज में चल रहे वर्ग संघर्ष में मज़दूर वर्ग और जनसमुदायों को नेतृत्व देते हुए बुर्जुआ वर्ग के प्रतिरोध को कुचलना, बुर्जुआ विचारधारा के वर्चस्व को तोड़ना और इस प्रक्रिया में मानसिक श्रम व शारीरिक श्रम, शहर व गाँव तथा उद्योग व कृषि के अन्तरों को मिटाते हुए माल उत्पादन का ख़ात्मा करना और कम्युनिज़्म, यानी एक वर्ग-विहीन समाज की ओर आगे बढ़ना। संशोधनवादी पार्टियाँ सबसे पहले मार्क्सवाद के मूल पर हमला करती हैं। बर्नस्टीन, काउत्स्की, त्रात्स्की, ख्रुश्चेव से लेकर देंङ शियाओ पेंङ ने मार्क्सवादी विज्ञान पर हमला किया। संशोधनवादी पार्टियाँ बस कम्युनिस्ट पार्टी होने का खोल ओढ़े होती हैं जबकि इनकी अर्न्तवस्तु पूँजीवादी पार्टी की होती है।

मज़दूर वर्ग को नेतृत्व देने का मतलब उन्हें विचारधारात्मक, राजनीतिक व आर्थिक संघर्षों में नेतृत्व देना है। यह बेहद ज़रूरी मसला है क्योंकि मज़दूर वर्ग की पार्टी मज़दूर वर्ग को स्वत:स्फूर्ततावाद के चंगुल में नहीं छोड़ती है। मज़दूर वर्ग केवल आर्थिक मुद्दों पर संघर्ष करते हुए ख़ुद-ब-ख़ुद क्रान्तिकारी चेतना विकसित नहीं कर सकता है। मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी राजनीति को ले जाने का काम पार्टी का होता है। राज्यसत्ता का प्रश्न और समाजवाद की अवधारणा तक की समझ को मज़दूर वर्ग केवल आर्थिक मुद्दों पर लड़कर हासिल नहीं कर सकता है। मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक लक्ष्य व उसकी नेतृत्वकारी भूमिका के बारे में पार्टी उसे परिचित कराती है, जो कि ख़ुद मज़दूर वर्ग के अगुवा तत्वों को आत्मसात करने वाला निकाय है। मज़दूर वर्ग की स्वत:स्फूर्त चेतना ट्रेड यूनियनवादी राजनीति के दायरे तक ही लेकर जाती है। आज पूरे भारत में केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें अर्थवाद के दायरे में ही मज़दूर वर्ग को उलझाये रहती हैं। देश के बड़े औद्योगिक शहरों में संशोधनवादी पार्टियों की यूनियनें मज़दूरों को वेतन-भत्ते की लड़ाई में उलझाये रहती हैं। बैंककर्मी, रेलवेकर्मी व तमाम स्थायी मज़दूरों की ये यूनियनें मज़दूरों के बीच एक यूनियन नौकरशाही को पैदा करती हैं जो कि इस व्यवस्था में ही अपना स्वर्ग खोजते हैं। असंगठित मज़दूरों में भी जिन यूनियनों का प्रभाव है उनमें से अधिकांश केवल फ़ैक्टरी मालिकों और श्रम विभाग की दलाली ही करती हैं। ऐसे में मज़दूरों के बीच हमें राजनीतिक प्रचार को लेकर जाने की ज़रूरत है। मज़दूरों को आर्थिक संघर्षों में पार्टी नेतृत्व देती है परन्तु इसके ज़रिए एकता बनाकर मज़दूरों के बीच राजनीतिक प्रचार का आधार तैयार करती है और इन आर्थिक संघर्षों को राजनीतिक तौर पर लड़ती हैं। यानी आर्थिक माँगों के लिए लड़ते हुए भी वे मज़दूर वर्ग को इन आर्थिक समस्याओं के मूल कारण से अवगत कराती हैं और उसे उसके दीर्घकालिक लक्ष्य के बारे में शिक्षित करती हैं। समाजवादी चेतना का प्रवेश 'बाहर से' कराया जाता है जिसका अर्थ यह है कि यह ख़ुद-ब-ख़ुद आर्थिक संघर्षों से पैदा नहीं हो सकती है और आरम्भिक दौर में इस चेतना को मज़दूर आन्दोलन में ले जाने वाला समूह अक्सर क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों का होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मज़दूर स्वयं क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी की भूमिका को नहीं निभा सकते। लेकिन लेनिन के ही शब्दों में जब वे इस भूमिका को निभाते हैं उस समय वे एक सामान्य मज़दूर नहीं बल्कि एक समाजवादी बुद्धिजीवी की भूमिका में होते हैं। सर्वहारा विचारधारा को मज़दूर वर्ग तक व आम मेहनतकश जनता तक लेकर जाने का काम सर्वहारा वर्ग की पार्टी करती है।

आज मज़दूर वर्ग के सामने ऐतिहासिक तौर पर दो नये कार्यभार भी हैं। हम जिस दौर में जी रहे हैं वहाँ सर्वहारा क्रान्तियों का पहला ऐतिहासिक कालचक्र पूरा हो चुका है और हम सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच वर्ग संघर्ष के दूसरे और निर्णायक वर्ग संघर्ष के महासमर के आरम्भ से पहले के दौर में हैं। ऐसे में हमें मज़दूर वर्ग को उसके अतीत के संघर्षों से परिचित कराने के सर्वहारा पुर्नजागरण के कार्यभार को भी उठाना होगा। यह काम क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ही कर सकती है। वहीं दूसरी तरफ़ हमें बदली हुई परिस्थितियों में क्रान्ति के विज्ञान को लागू करना है क्योंकि आज का पूँजीवाद हूबहू लेनिन के दौर का पूँजीवाद नहीं है और माओ के दौर से भी इसमें तमाम बदलाव आए हैं, जिन्हें मार्क्सवादी विज्ञान की रोशनी में समझना होगा। यह सर्वहारा प्रबोधन का कार्यभार बन जाता है। सर्वहारा पुर्नजागरण और सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार को मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी ही मौजूदा दौर में पूरा कर सकती है।

(अगले अंक में जारी)

'आदिविद्रोही' : आज़ादी और स्वाभिमान के संघर्ष की गौरव-गाथा

(पेज 15 से आगे)

वर्गीय विशिष्टताओं के अनुरूप आचरण करते हैं और पाठक के सम्मुख यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग समाज में मात्र वर्ग संघर्ष को छोड़कर अन्य कोई भी चीज़ शाश्वत नहीं है। प्रेम जैसा स्वाभाविक मानवीय भाव परस्पर विरोधी वर्गों के लिए नितान्त भिन्न परिभाषा लेकर उभरता है। जहाँ एक ओर क्रैसस के लिए वारिनिया का प्रेम स्वर्ण आभूषणों से ख़रीदा जा सकने योग्य पण्य है, ग्रैकस के लिए कृतज्ञता है, वहीं स्पार्टकस के लिए वह बस समानता है। वारिनिया और उसके बीच सिवाय प्रेम के अन्य किसी चीज़ का आदान-प्रदान नहीं होता है। जहाँ रोम के धनकुबेर ग़ुलाम विद्रोह को कुचलने के बाद बन्दी ग़ुलामों को सलीबों पर टाँग देते हैं, वहीं एक बार जब रोमनों को बन्दी बनाने के बाद स्पार्टकस उन्हें ग्लैडिएटरों की तरह एक दूसरे से लड़ने का आदेश देता है तो उसीका निकटतम सहयोगी डेविड कहता है, "जो उनके लिये ठीक है वह कभी हमारे लिए ठीक नहीं हो सकता।"

स्पार्टकस, डेविड, क्रिक्सस, गैनिकस और वारिनिया, मानवता में जो कुछ पवित्रतम है, उसके जीवन्त चित्र हैं। दूसरी ओर केयस, हेलेना, क्लॉदिया, एण्टोनियस, सिसेरो, क्रैसस तमाम विद्रूपताओं, विकृतियों और मानसिक विकारों से ग्रस्त हैं। उनमें से सर्वोत्तम ग्रैकस भी भीतर से बीमार है। एक ऐसा वर्ग जो समूचे समाज की छाती पर भारी पहाड़ की तरह हावी था जो समूचे समाज को रोगग्रस्त किये हुए था, उसे एक दिन जाना ही था और आख़िर एक दिन महान रोम की प्राचीरें उन योद्धा ग़ुलामों के पदाघातों के सम्मुख टिक न सकीं, उनको गिरना ही पड़ा।

मानव सभ्यता की इस मंज़िल में सम्पत्ति की व्यवस्था ने जीवन के प्रांगण में जन्म लिया और उसकी अन्धी हवस ने दासों और दास स्वामी अभिजातों के रूप में समाज को विभाजित कर दिया। एक ओर जहाँ विकास की इस नयी मंज़िल में मनुष्य ने प्रकृति के विरुद्ध नयी-नयी जीतें हासिल कीं, विज्ञान, कला, संस्कृति के क्षितिज का नया विस्तार किया। मगर जिन दासों ने अपने श्रम और रक्त के निचोड़ से सड़कें बनायीं, अट्टालिकाएँ खड़ी कीं, खानों से सोना निकाला, धरती की सतह पर अनाज उगाये, वे ग़ुलाम ही रहे। आज़ादी का गला घोंटने के लिए मानव समाज के भीतर से ही जन्मे अँधेरे के स्वामियों की सत्ता के विरुद्ध ग़ुलामों ने कई-कई बग़ावतें की और अन्ततः रोमन प्राचीरों को अपने आवेगमय उफान से ध्वस्त करते हुए उनके ध्वंसावशेषों पर नये युग की शुरुआत के नये इतिहास के शिलालेख डाले।

लेकिन फ़ास्ट की कृति में यह विद्रोह असफल रहता है, यह संघर्ष स्थूल भौतिक दृष्टि से पराजित होता है और उसके नायक सलीब पर टाँग दिये जाते हैं, मैदान में खेत रहते हैं। तब भी उन विद्रोही योद्धाओं की अन्तिम विजय में हमारी आस्था कभी नहीं खोती और पुस्तक समाप्त करने पर मन जहाँ उदासी से भरा होता है, वहाँ उस उदासी में और सब कुछ होने के बावजूद निराशा का रंग नहीं होता। संघर्ष की असली पराजय आत्मा की पराजय है और सभी श्रेष्ठ मानवतावादी कलाकारों की तरह हावर्ड फ़ास्ट के यहाँ भी आत्मा कभी पराजित नहीं होती, उसका अजेय स्वर कभी मन्द नहीं पड़ता। दास युग के बाद भी वह आदिविद्रोही, वह स्पार्टकस, वह हमारा पुरखा लौटा है और बार-बार लौटा है, करोड़ों की संख्या में लौटा है। जहाँ-जहाँ भी न्याय और स्वाभिमान और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष हुए हैं और रक्त बहा है, स्पार्टकस वहाँ मौजूद रहा है। "मैं विद्रोही हूँ। मैं रणक्लान्त हो चुका हूँ। फिर मैं उसी दिन शान्त होऊँगा जिस दिन उत्पीड़ित लोगों के क्रन्दन से यह आकाश, यह वायुमण्डल गुंजित होना बन्द हो जायेगा।"

'आह्वान कैम्पस टाइम्स' से साभार

फ़ासिस्टों को धूल चटाने वाले मज़दूर वर्ग के महान क्रान्तिकारी नेता और शिक्षक जोसेफ़ स्तालिन के जन्मदिवस (21 दिसम्बर) के अवसर पर

कम्युनिस्ट कार्यशैली के बारे में एक महत्त्वपूर्ण उद्धरण

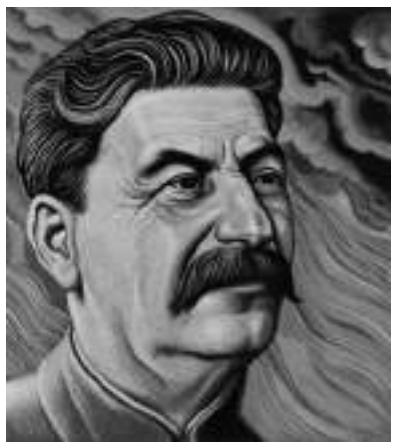

कुछ लोगों का विश्वास है कि फ़रमानों द्वारा हर चीज़ की व्यवस्था हो सकती है। हर तरह का सुधार किया जा सकता है। इस तरह के विश्वास वाले लोग जिस तरह हर बात के लिए चटपट "क्रान्तिकारी" हल निकाल लेते हैं और "क्रान्तिकारी" योजनाओं के अण्डे दिया करते हैं, उसे कौन नहीं जानता? एक रूसी लेखक इलिया एहरेनबुर्ग ने अपनी कहानी 'द पर्कोमान' (अर्थात पक्का कम्युनिस्ट मानव) में इस तरह के एक "बोल्शेविक" का चित्रण किया है। उक्त "बोल्शेविक" ने एक पूर्णतः आदर्श व्यक्ति की रचना का सूत्र खोज निकालने का निश्चय किया... और इसी "कार्य" में खो गया। इस कहानी में कुछ अतिशयोक्ति है, तो भी वह उपरोक्त बीमारी का एक सही चित्र उपस्थित करती है। लेकिन मैं समझता हूँ कि इस रोग का उपहास जिस निर्ममता से लेनिन ने किया है वैसा और किसी ने नहीं किया है। हर चीज़ की चटपट योजना बना लेने और फ़तवों द्वारा हर काम की व्यवस्था कर लेने की इस धारणा को लेनिन ने "कम्युनिस्ट दम्भ" कहा है।

लेनिन ने लिखा है, "कम्युनिस्ट दम्भ एक ऐसे आदमी का लक्षण है जो समझता है कि वह केवल फ़तवे निकालकर सब प्रश्नों को हल कर सकता है।" (लेनिन, 'नयी आर्थिक नीति और राजनीतिक शिक्षा विभाग के कार्यभार', ग्रन्थावली, खण्ड 9, पृ. 273)

लेनिन अक्सर सीधे दैनिक काम और खोखले "क्रान्तिकारी" शब्दाडम्बर का भेद बताया करते थे। वह बराबर इस काम पर ज़ोर देते थे कि यह तथाकथित "क्रान्तिकारी" योजनाबाज़ी लेनिनवाद के सिद्धान्तों और भावना के सर्वथा विरुद्ध है।

उन्होंने लिखा है, "...लच्छेदार भाषा का प्रयोग कम करके अपने दैनिक कार्य की मात्रा बढ़ाओ।"

"...राजनीतिक आतिशबाज़ी का प्रदर्शन कम करो, कम्युनिस्ट निर्माण के साधारण किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की ओर अधिक ध्यान दो।" (लेनिन, 'एक महान शुरुआत', ग्रन्थावली, खण्ड 9, पृ. 430-40)

अमेरिकी कार्यकुशलता "क्रान्तिकारी" मानिलोववाद और हास्यास्पद योजनाबाज़ी की शत्रु है। यह कार्यकुशलता वह अजेय शक्ति है जो न बाधाओं को जानती है और न उन्हें स्वीकार करती है। अपने उद्यम और अध्यवसाय के बल से कार्यकुशल व्यक्ति सभी बाधाओं को दूर कर देता है और जब तक कार्य समाप्त नहीं हो जाता तब तक उसे करता जाता है चाहे वह काम कितना ही छोटा क्यों न हो। इस प्रकार की कार्यकुशलता (अमेरिकी दक्षता) के बिना कोई भी रचनात्मक कार्य पूरा नहीं किया जा सकता।

किन्तु उसका (अमेरिकी दक्षता का) संयोग रूसी क्रान्तिकारी उत्साह के साथ न हो तो अमेरिकी कार्यकुशलता के विकृत होकर संकुचित और सिद्धान्तहीन व्यावसायिकता में बदल जाने की पूरी सम्भावना है। संकुचित व्यावहारिकता और सिद्धान्तहीन व्यावसायिकता के कारण कभी-कभी कुछ "बोल्शेविकों" ने क्रान्तिकारी कार्य को त्याग दिया है। उनके इस रोग की बात किसने नहीं सुनी है? बी. पिलनियाक की 'बंजर वर्ष' नामक कहानी में हमें इस विचित्र रोग का परिचय मिलता है। उसमें कुछ ऐसे "बोल्शेविकों" का चित्रण किया गया है जिनकी इच्छाशक्ति और व्यावहारिक संकल्प काफ़ी दृढ़ हैं और जो काफ़ी "ज़ोरशोर" से "काम" करते हैं। लेकिन वे कुछ समझ नहीं पाते, वे यह नहीं जानते कि वे "क्या कर रहे हैं" और इस कारण क्रान्तिकारी पथ से भटक जाते हैं। इस संकुचित व्यावसायिकता का उपहास करने में लेनिन से अधिक निर्ममता और किसी ने नहीं दिखायी है। उन्होंने इसे "कूपमण्डूक व्यावहारिकता" और "नासमझ बनियापन" बतलाया है। लेनिन ने महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी कार्य करने की और दैनिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी सम्बन्ध बनाये रखने की आवश्यकता में और इस संकुचित दृष्टिकोण में भेद बतलाया है। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि सिद्धान्तहीन व्यावसायिकता लेनिनवाद के सिद्धान्तों के उतना ही विरुद्ध है जितना कि तथाकथित "क्रान्तिकारी" योजनावाद।

पार्टी और राज्य के कार्यक्षेत्र में रूसी क्रान्तिकारी उत्साह और अमेरिकी कार्यकुशलता के इस सम्मिश्रण का नाम है लेनिनवाद। इन्हीं दो गुणों के संयोग से निपुण लेनिनवादी कार्यकर्ता उत्पन्न होता है और लेनिनवादी कार्यशैली का निर्माण होता है।

('लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त' से)

चीनी क्रान्ति के नेता और मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस (26 दिसम्बर) के अवसर पर

क्रान्तिकारी जनदिशा के बारे में कुछ ज़रूरी उद्धरण

पिछले बीस साल से ज़्यादा अरसे से हमारी पार्टी रोज़ाना जन-कार्य कर रही है, तथा पिछले दस-बारह वर्षों से वह रोज़ाना जनदिशा की चर्चा कर रही है। हमारा हमेशा यह मत रहा है कि क्रान्ति को विशाल जन-समुदाय पर निर्भर रहना चाहिए और सभी लोगों के प्रयत्नों पर निर्भर रहना चाहिए, तथा महज़ चन्द आदमियों द्वारा आदेश जारी किये जाने का हमने हमेशा विरोध किया है। लेकिन अब भी कुछ साथी अपने काम में जनदिशा को पूरी तरह कार्यान्वित नहीं करते। वे अब भी इने-गिने लोगों पर निर्भर रहते हैं और अलग-थलग रहकर कार्य करते हैं। इसकी एक वजह यह है कि वे लोग जो कुछ भी करते हैं वह सब उन लोगों को बताने से कतराते हैं जिनका वे नेतृत्व करते हैं तथा वे यह नहीं जानते कि अपने नेतृत्व में चलने वाले लोगों की पहलक़दमी और सृजन-शक्ति का क्यों और कैसे विकास किया जाये। मनोगत रूप से तो वे भी यह चाहते हैं कि हर आदमी काम में हाथ बटाये, लेकिन वास्तव में वे दूसरे लोगों को यह नहीं बताते कि उन्हें क्या करना चाहिए और कैसे करना चाहिए। ऐसी हालत में, भला यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि हर आदमी सक्रिय बन जायेगा तथा यह कैसे हो सकता है कि कोई काम अच्छी तरह किया जा सकेगा? इस समस्या को सुलझाने के लिए, बुनियादी बात है जनदिशा की विचारधारात्मक शिक्षा देना, लेकिन साथ ही हमें इन साथियों को काम के बहुत से ठोस तरीक़े भी सिखाने चाहिए।

"'शानशी-स्वेय्वान दैनिक' के सम्पादकीय विभाग के साथ बातचीत" (2 अप्रैल 1948)

जन-समुदाय के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए, हमें जन-समुदाय की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुसार काम करना चाहिए। जन-समुदाय के लिए किये जाने वाले तमाम कार्यों का आरम्भ उसकी आवश्यकताओं के आधार पर होना चाहिए न कि किसी व्यक्ति की सदिच्छाओं के आधार पर। ऐसा अक्सर देखने में आता है कि वस्तुगत रूप से तो जन-समुदाय के लिए किसी परिवर्तन की आवश्यकता है, लेकिन मनोगत रूप से वह इस आवश्यकता के प्रति अभी जागरूक नहीं हो पाया, इस परिवर्तन को करने के लिए अभी तैयार अथवा संकल्पबद्ध नहीं हो पाया। ऐसी स्थिति में हमें धीरज के साथ इन्तज़ार करना चाहिए। हमें यह परिवर्तन तब तक नहीं लाना चाहिए जब तक हमारे कार्य के ज़रिए जन-समुदाय का अधिकांश भाग उक्त आवश्यकता के प्रति जागरूक न हो जाये तथा वह उसे कार्यान्वित करने के लिए तैयार और संकल्पबद्ध न हो जाये। अन्यथा हम जन-समुदाय से अलग हो जायेंगे। जब तक जन-समुदाय जागरूक और तैयार नहीं हो जाता, तब तक कोई भी ऐसा काम जिसमें उसके शामिल होने की ज़रूरत है, महज़ एक खानापूरी करने के समान होगा तथा वह असफल हो जायेगा... यहाँ दो उसूल हैं; पहला उसूल है जन-समुदाय की वास्तविक आवश्यकताओं को देखना, न कि अपनी कल्पना के आधार पर उसकी आवश्यकताओं का निर्णय कर देना, तथा दूसरा उसूल है जन-समुदाय की आकांक्षा, जिसे अपना संकल्प ख़ुद करना चाहिए न कि हमें उस पर अपना संकल्प लादना चाहिए।

"सांस्कृतिक कार्य में संयुक्त मोर्चा" (30 अक्तूबर 1944)

फ़रमानशाही पर अमल करना सभी तरह के कामों में ग़लत है, क्योंकि जन-समुदाय की राजनीतिक चेतना के स्तर से आगे बढ़ने और स्वेच्छा के उसूल का उल्लंघन करने वाली यह प्रवृत्ति जल्दबाज़ी की बीमारी को ज़ाहिर करती है। हमारे साथियों को यह नहीं सोचना चाहिए कि जिन बातों को वे ख़ुद समझते हैं उन्हें जन-समुदाय भी समझता है। आम जनता उन बातों को समझती है अथवा नहीं तथा वह कार्रवाई करने के लिए तैयार है अथवा नहीं, इसका पता सिर्फ़ जन-समुदाय के बीच जाने और जाँच-पड़ताल करने से ही चल सकता है। अगर हम ऐसा करेंगे, तो हम फ़रमानशाही से बच जायेंगे। किसी काम में दुमछल्लावादी रुख अपनाना भी गलत है, क्योंकि जन-समुदाय की राजनीतिक चेतना के स्तर से पिछड़ जाने और जन-समुदाय का आगे की ओर नेतृत्व करने के उसूल का उल्लंघन करने वाली यह प्रवृत्ति सुस्ती की बीमारी को ज़ाहिर करती है। हमारे साथियों को यह नहीं सोचना चाहिए कि उन बातों को जन-समुदाय भी नहीं समझता जिन्हें हमारे साथी ख़ुद अभी तक नहीं समझ पाते। यह बात अक्सर देखने में आती है कि जन-समुदाय हमसे आगे बढ़ जाता है तथा एक कदम और आगे बढ़ने के लिए लालायित रहता है; फिर भी हमारे साथी जन-समुदाय के नेता की भूमिका अदा नहीं कर पाते और कुछ पिछड़े हुए तत्वों के दुमछल्ले बन जाते हैं, उनके विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं, इतना ही नहीं उनके विचारों को ग़लती से व्यापक जन-समुदाय के विचार समझ बैठते हैं।

"मिलीजुली सरकार के बारे में" (24 अप्रैल 1945)

जनता के विचारों को एकत्र करके उनका निचोड़ निकालना, उसके बाद जन-समुदाय के बीच जाना, उन विचारों पर डटे रहना और उनको कार्यान्वित करना, ताकि नेतृत्व के सही विचारों का निर्माण किया जा सके – यह नेतृत्व का बुनियादी तरीक़ा है।

"नेतृत्व के तरीक़ों से सम्बन्धित कुछ सवाल" (1 जून 1943)

हमारी पार्टी के समूचे अमली काम में, सही नेतृत्व के लिए "जन-समुदाय से लेकर जन-समुदाय को ही लौटा देने" का तरीक़ा अपनाना ज़रूरी है। इसका मतलब यह है; जन-समुदाय के विचारों को (बिखरे हुए और अव्यवस्थित विचारों को) एकत्र करो और उनका निचोड़ निकालो (अध्ययन के ज़रिए उन्हें केन्द्रित और सुव्यवस्थित विचारों में बदल डालो), इसके बाद जन-समुदाय के बीच जाओ, इन विचारों का प्रचार करो और जन-समुदाय को समझाओ जिससे वह उन्हें अपने विचारों के रूप में अपना ले, उन पर दृढ़ता से क़ायम रहे और उन्हें कार्य रूप में परिणित करे, तथा इस प्रकार की कार्रवाई के दौरान इन विचारों के अचूकपन की परख कर लो। इसके बाद फिर एक बार जन-समुदाय के विचारों को एकत्र करके उनका निचोड़ निकालो और फिर एक बार जन-समुदाय के बीच जाओ ताकि उन विचारों पर अविचल रहा जा सके और उन्हें कार्यान्वित किया जा सके। इस प्रकार की प्रक्रिया को एक अन्तहीन चक्र के रूप में बार-बार दोहराते रहने से वे विचार हर बार पहले से ज़्यादा सही, पहले से ज़्यादा सजीव और पहले से ज़्यादा समृद्ध बनते जायेंगे। यही है मार्क्सवाद का ज्ञान-सिद्धान्त।

"नेतृत्व के तरीक़ों से सम्बन्धित कुछ सवाल" (1 जून 1943)

‘आदिविद्रोही’ : आज़ादी और स्वाभिमान के संघर्ष की गौरव-गाथा

– शीलभद्र

“यह किताब मेरी बेटी राशेल और मेरे बेटे जॉनथन के लिए है। यह बहादुर मर्दों और औरतों की कहानी है जो बहुत पहले रहा करते थे और जिनके नाम लोग कभी नहीं भूले। इस कहानी के नायक आज़ादी को, मनुष्य के स्वाभिमान को दुनिया की सब चीज़ों से ज़्यादा प्यार करते थे और उन्होंने अपनी ज़िन्दगी को अच्छी तरह जिया, जैसे कि उसे जीना चाहिए – हिम्मत के साथ, आन-बान के साथ। मैंने यह कहानी इसलिए लिखी कि मेरे बच्चे और दूसरों के बच्चे, जो भी इसे पढ़ें, हमारे अपने उद्विग्न भविष्य के लिए इससे ताक़त पायें और अन्याय और अत्याचार के ख़िलाफ़ लड़ें, ताकि स्पार्टकस का सपना हमारे समय में सच हो सके।” हावर्ड फ़ास्ट ने ‘आदिविद्रोही’ के समर्पण में यही शब्द लिखे थे और यही सन्देश है इस अमर कृति का अपने पाठकों के लिए।

आदिविद्रोही यानी पहला विद्रोही यानी वर्तमान युग और आने वाले तमाम युगों के विद्रोहियों का पुरखा यानी हमारा पुरखा। कौन था हमारा पुरखा? इतिहास के किस युग में वह पैदा हुआ? उसका जीवन कैसा था? वह समाज कैसा था जिसमें वह पला, बड़ा हुआ और संघर्ष किया? और तमाम दुनिया के मेहनतकश जो अपनी दो पीढ़ियों से पहले का नाम तक नहीं जानते, उस पुरखे को किस कारण जानते हैं और याद करते हैं और उसकी स्मृतियों को सँजोये रखते हैं और उससे जीने और ख़ूबसूरती से जीने और संघर्ष करने की प्रेरणा पाते हैं?

वह पुरखा था स्पार्टकस और उसी की कहानी को कहा है हावर्ड फ़ास्ट ने। इतिहास जिसका प्रिय विषय है, अपने देश का इतिहास, अपनी क़ौम का इतिहास, और इतिहास उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में राजा-रानी की प्रणय कथा इतिहास होती है या लड़ाई में किसी राजा की हार-जीत इतिहास होती है या राजमहल में चलने वाले षड्यंत्र इतिहास होते हैं, बल्कि इतिहास वह जो अपना स्रोत करोड़ों-करोड़ साधारण जनों की क्रिया-शक्ति में पाता है, जिसकी दृष्टि राजा से अधिक प्रजा पर होती है और जो उन सामाजिक शक्तियों को समझने का प्रयत्न करता है जिनके अन्तरसंघर्ष से जीवन में प्रगति होती है। हावर्ड फ़ास्ट के पास ऐसी ही तीक्ष्ण ऐतिहासिक दृष्टि है – और व्यापक भी, जो स्थान-काल किसी का भेद नहीं मानती, जिसके लिए दुनिया एक और अखण्ड है और यह सब भौगोलिक और राजनीतिक सीमाएँ झूठी हैं और समय एक निरन्तर बहती हुई नदी है जिसमें भूत-भविष्य-वर्तमान नाम के कालखण्ड केवल अपने समझने की सुविधा के लिए बनाये गये हैं।

ऐसे एक और अखण्ड जगत में एक और अविच्छिन्न काल प्रवाह में वह प्राणी रहता है जिसका नाम मनुष्य है, जो सर्वसहा, मूर्त क्षमा पृथ्वी का पुत्र है, तेजः पुंज, दृढ़वती, धीमान, सत्याश्रयी, अक्रोधी, अशेष धैर्यवान है, जो सब जानता है, सब समझता है, सब सहता है और सीमा का अतिक्रमण होने पर फिर एक दिन फूट पड़ता है। उसी को भूकम्प कहते हैं।

ऐसे ही भूकम्पों की, विद्रोहों की कहानी है स्पार्टकस की कहानी । जीवन उसके लिये न्याय के संघर्ष की गाथा है। और जहाँ भी न्याय के लिए संघर्ष होता है, स्पार्टकस का लहू गिरता है, कोई भी देश हो, कोई भी काल हो। ईसा से 73 वर्ष पूर्व के रोम का वह एक ग़ुलाम था, उस रोम का ग़ुलाम जहाँ ग़ुलामी की प्रथा अपने शिखर पर थी और लाखों ग़ुलामों में से एक उस ग़ुलाम ने उस पाशविक प्रथा को चुनौती देने का साहस और विवेक और अपने आप में पाया था।

आदिविद्रोही मानव सभ्यता के इतिहास में उस युग की कहानी है जिसे दास युग के नाम से जाना जाता है। मानव अपनी आदिम अवस्था से आगे बढ़ चुका था। समाज वर्गों में विभाजित हो चुका था। बहुसंख्यक शोषित जनसमुदाय पर अंकुश रखने हेतु राज्य व्यवस्थित रूप ले चुका था। उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन के कार्यों में मानव श्रम की बढ़ती हुई भूमिका के फलस्वरूप पहले के आपसी कबीलाई युद्धों में जहाँ पराजित शत्रुओं को मार दिया जाता था वहाँ अब उन्हें ग़ुलाम बना लिया जाने लगा था। इसके साथ ही निरन्तर बढ़ते हुए करों से बदहाल छोटे-छोटे कृषक अपनी खेती योग्य ज़मीन के टुकड़ों से बेदखल हो ग़ुलामों में तब्दील हो रहे थे और ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़ों पर हजारों-हज़ार एकड़ की जागीरें खड़ी होती जा रही थीं। इन जागीरों में सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में ग़ुलाम काम करते थे और जानवरों से भी बदतर जीवन बिताते थे।

ग़ुलाम समाज का सर्वोच्च रूप तत्कालीन रोम था और रोम एक साम्राज्य था, गणतंत्र था। गणतंत्र यानी राज्य व्यवस्था का प्रबन्ध चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में था यानी राज्य व्यवस्था बहुत कुछ वर्तमान युग की जनतांत्रिक प्रणाली जैसी थी – लेकिन एक महत्वपूर्ण अन्तर था, तत्कालीन समाज के ग़ुलाम नागरिक अधिकारों से ही नहीं, सामान्य मानवीय अधिकारों से भी वंचित थे। यह गणतंत्र कैसा होता है, इस हक़ीक़त को ‘आदिविद्रोही’ का एक पात्र सीनेटर ग्रैकस बहुत साफ़गोई के साथ बयान करता है।

उसी के शब्दों में, *“...देखो हम लोग एक गणतंत्र में रहते हैं। इसका मतलब है कि बहुत से लोग ऐसे हैं जिनके पास कुछ भी नहीं है और मुट्ठी भर लोग ऐसे हैं जिनके पास बहुत कुछ है।... वे लोग जिनके पास बहुत कुछ है उनको अपनी सम्पत्ति की रक्षा करनी होती है और इसलिए वे जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनको तुम्हारे और मेरे और हमारे अच्छे मेज़बान ऐण्टोनियस की सम्पत्ति के लिए जान देने को तैयार रहना चाहिए। ग़ुलाम हमको पसन्द नहीं करते इसलिए ग़ुलाम हमारी रक्षा ग़ुलामों से नहीं कर सकते, इसलिए बहुत से लोग जिनके पास ग़ुलाम नहीं हैं, उनको हमारे लिए जान देने को तैयार रहना चाहिए ताकि हम अपने ग़ुलाम रख सकें। रोम के पास ढाई लाख सैनिक हैं। इन सैनिकों को विदेशों में जाने के लिए तैयार रहना चाहिए कि मार्च करते-करते इनके पैर घिस जायें, कि वे गन्दगी में और गलाज़त में रहें, कि वे खून में लोट लगायें – ताकि हम सुरक्षित रहें, आराम से ज़िन्दगी बितायें और अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को बढ़ायें। जब ये सैनिक स्पार्टकस से लड़ने गये तो इनके पास ऐसी कोई चीज़ न थी जिसकी कि वे रक्षा करते ,जैसी कि ग़ुलामों के पास थी।... वे किसान जो ग़ुलामों से लड़ते हुए मारे गये, सेना में उनके होने का सबसे पहला कारण यह है कि जागीरदारों ने उनको उनके खेतों से खदेड़ दिया है। ग़ुलामों को लेकर जो बड़ी-बड़ी जागीरें चलती थीं, जिनमें बड़े पैमाने पर खेती होती थी, उन्होंने उन किसानों को एकदम भिखमंगा बना दिया है, ऐसा भिखमंगा जिसके पास ज़मीन का एक टुकड़ा भी नहीं, और मज़ा यह है कि इन्हीं जागीरों की हिफ़ाज़त के लिए वे किसान जान देते हैं। सच बात तो यह है कि उन ग़ुलामों को (यदि वे विजयी होते हैं) हमारे इस रोमन सैनिक की बड़ी सख़्त ज़रूरत होगी क्योंकि ज़मीन जुताई के लिए ग़ुलाम ख़ुद काफ़ी न होंगे। ज़मीन इतनी काफ़ी होगी कि सबको पूरी पड़ जाये। मगर तब भी वह अपने ही सपनों को नष्ट करने के लिए लड़ने को चला जाता है। किसलिए? हाँ किस लिए?”*

इस गणतंत्र में स्वयं अपने जैसे लोगों की भूमिका बताते हुए ग्रैकस एक बार फिर बेलाग तरीक़े से अपनी बात कहता है : *“...राजनीतिज्ञ ही इस उलटे-सीधे मकान को खड़ा रखनेवाला सीमेण्ट हैं। उच्चवंशों वाले स्वयं इस काम को नहीं कर सकते। पहली बात तो यह कि उनका सोचने का ढंग तुम्हारे जैसा है और रोम के नागरिकों को यह बात पसन्द नहीं है कि कोई उनको, भेड़-बकरी कहे। भेड़-बकरी वे नहीं हैं – जैसा कि एक न एक दिन तुम्हारी समझ में आयेगा। दूसरी बात यह कि इस उच्चवंशीय व्यक्ति को इस साधारण नागरिक के बारे में कुछ भी नहीं मालूम। अगर यह चीज़ बिलकुल उसी पर छोड़ दी जाये तो यह ढाँचा एक दिन में भहरा पड़े। इसलिए वह मेरे जैसे लोगों के पास आता है। वह हमारे बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता। जो चीज़ नितान्त असंगत है हम उसके अन्दर संगति पैदा करते हैं। हम लोगों को यह बात समझा देते हैं कि जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता अमीरों के लिए मरने में है। हम अमीरों को समझा देते हैं कि उन्हें अपनी दौलत का कुछ हिस्सा छोड़ देना चाहिए ताकि बाक़ी को वे अपने पास रख सकें। हम जादूगर हैं। हम भ्रम की चादर फैला देते हैं। और वह ऐसा भ्रम होता है जिससे कोई बच नहीं सकता। हम लोगों से कहते हैं, जनता से कहते हैं – तुम्हीं शक्ति हो। तुम्हारा वोट ही रोम की शक्ति और कीर्ति का स्रोत है। सारे संसार में केवल तुम्हीं स्वतंत्र हो। तुम्हारी स्वतंत्रता से बढ़कर मूल्यवान कोई भी चीज़ नहीं है, तुम्हारी सभ्यता से अधिक प्रशंसनीय कुछ भी नहीं है। और तुम्हीं उसका नियंत्रण करते हो, तुम्हीं शक्ति हो, तुम्हीं सत्ता हो। और तब वे हमारे उम्मीदवारों के लिए वोट देते हैं। वे हमारी हार पर आँसू बहाते हैं, हमारी जीत पर खुशी से हँसते हैं और अपने ऊपर गर्व अनुभव करते हैं और अपने को दूसरों से बढ़ा-चढ़ा समझते हैं, क्योंकि वे ग़ुलाम नहीं हैं। चाहे उनकी हालत कितनी ही नीचे गिरी हुई क्यों न हो, चाहे वे नालियों में ही क्यों न सोते हों, चाहे वे तलवार के खेल और घुड़दौड़ के मैदानों में सारे-सारे दिन लकड़ी की सस्ती-सस्ती सीटों पर ही क्यों न बैठे रहते हों, चाहे वे अपने बच्चों के पैदा होते ही उनका गला क्यों न घोंट देते हों, चाहे उनकी बसर खैरात पर ही क्यों न होती हो... । और, सिसेरो यह मेरी विशेष कला है। राजनीति को कभी तुच्छ न समझना।”*

उबाऊ हो जाने का खतरा उठाते हुए भी इतना लम्बा उद्धरण देने का हमारा उद्देश्य यही था कि हमारा पाठक निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्था को उसके ‘सही’ रूप में देख पाये और वर्तमान परिस्थितियों से मिलान कर सके। अब हम उपन्यास की मुख्य कथावस्तु का जिक्र करेंगे।

‘आदिविद्रोही’ की कथावस्तु को यदि संक्षेप में कहा जाये तो दिखाई देता है कि ईसा पूर्व रोम के ग़ुलाम समाज में जारी वर्ग संघर्ष ही इस उपन्यास की अन्तर्वस्तु है। परस्पर विरोधी वर्ग आपस में टकराते हैं, क्रिया-प्रतिक्रिया की प्रक्रिया के ज़रिए इतिहास को गति देते हैं और समग्रता में अत्यन्त तीखे रूप में सामने आते हैं। भिन्न-भिन्न वर्गों के भिन्न-भिन्न प्रतिनिधि हैं जो अपने-अपने वर्गों की तमाम विशिष्टताओं के साथ रंगमंच पर उपस्थित होते हैं और अपनी वर्गीय घृणा, क्रोध, प्रेम, पीड़ा, आशा, निराशा जैसी स्वाभाविक मानवीय भावनाओं द्वारा पाठक को उद्वेलित करते हैं। ग़ुलामों के प्रतिनिधि के रूप में जहाँ एक ओर स्पार्टकस, डेविड, क्रिक्सस, गैनिकस और वारिनिया जैसे पात्र हैं, वहाँ ग़ुलामों के रस-रक्त पर खड़ी ऐशगाहों के स्वामी वर्ग का प्रतिनिधित्व क्रैसस, एण्टोनियस, केयस और एक दूसरे स्तर पर ग्रैकस और सिसेरो जैसे पात्रों के ज़रिए होता है। इस उपन्यास की सर्वाधिक सशक्त उपलब्धि यही है कि वर्ग समाज का मानव जैसा है वैसा वह सशरीर इस कृति में उपस्थित है – वह न देवता है और न ही राक्षस । वह मात्र अपनी वर्गीय विशिष्टताओं का प्रतिनिधि माना है। इसीलिए जहाँ पाठक, एक ओर उपन्यास के केन्द्रीय पात्रों को आशा, निराशा, घृणा, प्रेम, क्रोध, पीड़ा का एहसास करता है, संवेदना के स्तर पर उपन्यास के पत्र के साथ जीता है, वहीं इसके लिए दोषी कोई इंसान नहीं है – एक समूची व्यवस्था है जो अमानवीय है, पाशविक है, बर्बर है। समूचा आक्रोश उसी अवस्था के विरुद्ध पैदा होता है।

उपन्यास का आरम्भ उस समय होता है जब वह समूचा घटनाचक्र, जो इसकी मुख्य कथावस्तु है, घट चुका है। उपन्यास का अधिकांश भाग फ़्लैशबैक में है और ऐसे पात्रों के द्वारा, जो घटनाक्रम के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष साक्षी रह चुके हैं, घटनाचक्र पाठक तक पहुँचता है। ग़ुलामों के प्रचण्ड क्रोध का प्रथम सागर-ज्वार अब तक दबाया जा चुका है । इस महान यज्ञ में हज़ारों ग़ुलाम अपने को होम कर चुके हैं और उनमें से छह हज़ार चार सौ बहत्तर ग़ुलाम रोम से कापुआ जाने वाले राजमार्ग पर सलीबों पर झूल रहे हैं। महान रोम की सड़कें, जो इस देश के वैभव और समृद्धि की सूचक हैं, एक बार फिर यात्रियों के लिए खोल दी गयी हैं। सर्वत्र शान्ति है और ऐसे समय में एक कुलीन रोमन घराने के युवा भाई-बहन केयस और हेलेना और हेलेना की सहेली क्लॉदिया रोम से कापुआ की यात्रा पर निकले हैं। यद्यपि ग़ुलामों का वह प्रथम युद्ध समाप्त हो चुका है, ग़ुलाम खेत रहे फिर भी अभिजातों के मनो-मस्तिष्क पर अभी भी उन ग़ुलामों का प्रेत लगातार हावी है, सभी जगह वे ही चर्चा का विषय हैं और निपुण और चतुर अभिजात दार्शनिकों द्वारा इस युद्ध के इतिहास को मिटाने के लाख प्रयत्नों के बावजूद उनका हौव्वा अभी तक क़ायम है। कापुआ तक की यात्रा के दौरान हमारे युवा रोमन कुलीन यात्री बीच-बीच में दो-तीन स्थानों पर रात्रि-विश्राम करने के लिए ठहरते हैं।

(पेज 15 पर जारी)

'आदिविद्रोही'

(पेज 14 से आगे)

ऐसा ही एक स्थान है विला सलारिया जो केयस के मामा एण्टोनियस की जागीर है। यहाँ उनकी भेंट तत्कालीन रोम की तीन प्रमुख रोमन हस्तियों के साथ होती है – सीनेटर ग्रैकस जो रोमन सीनेट के अत्यन्त प्रभावशाली लोगों में से एक है, सेनापति क्रैसस जिसके नेतृत्व में हुए युद्ध में ग़ुलाम पराजित हुए और एक युवा प्रशासनिक अधिकारी सिसेरो जिसकी प्रतिभा का लोहा वरिष्ठ रोमन अभिजातों द्वारा भी माना जाता था। इसी स्थान पर उपन्यास में स्पार्टकस का प्रवेश होता है और पाठक को उस महान ग़ुलाम योद्धा के जीवन की एक झलक मिलती है।

स्पार्टकस एक ग्लैडिएटर था। प्राचीन रोम में ग्लैडिएटर उन ग़ुलामों को कहा जाता था जिन्हें रोमन अभिजातों के मनोरंजन हेतु अखाड़े में एक दूसरे से लड़ाया जाता था। तत्कालीन रोम में यह खेल अत्यन्त लोकप्रिय था और दास जिनकी इच्छाएँ ग़ुलाम थीं, जिनकी ज़िन्दगी क़ैद थी, वे जानवरों की तरह लड़कर और एक दूसरे की जान लेकर अपने स्वामियों का मनो-विलास करने के लिए विवश थे। स्वामियों के पास तमाम हक़ थे। वे ग़ुलामों के पाँवों में बेड़ियाँ पहनाते थे और उनके ऐन्द्रिक भोग की वस्तु ग़ुलाम स्त्रियाँ अपने बच्चों तक से महरूम थीं क्योंकि हर ग़ुलाम की बाज़ार में क़ीमत होती थी और ग़ुलाम बच्चे भी, कुछ कम सही पर बाज़ार में बिक्री योग्य वस्तु होते थे।

ग़ुलामों के पास कोई हक़ नहीं थे। ग्लैडिएटर ग़ुलाम होते थे जिनमें, एक अखाड़े के मालिक लैण्टुलस बाटियाटस के शब्दों में, तीखा ज़हर होता था, जो लड़ सकते थे, जो गुस्सा करना जानते थे। और सिर्फ़ एक जगह थी जहाँ इस तरह के आदमी मिल सकते थे। और वह जगह थी खानें, ताँबे की खानें, सोने की खानें। वे ऐसी जगह से आते थे जिसके मुकाबले सेना भी स्वर्ग थी, जागीर पर काम करना भी स्वर्ग था। और यहाँ तक की फाँसी भी मुक्ति थी। स्पार्टकस कोरू था यानी तीन पीढ़ियों का ग़ुलाम। ग़ुलाम के ग़ुलाम बेटे का बेटा। तब स्पार्टकस एक ग्लैडिएटर था – लैण्टुलस बाटियाटस के अखाड़े का एक ग्लैडिएटर, जिसने उसे नूबिया की सोने की खान से ख़रीदा था। नूबिया जो शायद धरती पर एक नर्क था। इससे भिन्न नरक और हो भी क्या सकता था। नरक वहाँ आरम्भ होता है जहाँ जीवन के सीधे-सादे आवश्यक काम भी यन्त्रणा बन जाते हैं। नूबिया की खानों की झुलसती गर्मी में दिन भर नौ सेर वज़नी हथौड़े से सोना निकालने वाले इन ग़ुलाम मजदूरों का राशन बस पानी था – सेर भर से कुछ कम पानी दिन में दो बार। मगर ऐसी ख़ुश्क जगह में गर्मी शरीर का जितना पानी सुखा डालती थी उसको पूरा करने में यह दो सेर पानी काफ़ी नहीं होता था और धीरे-धीरे उन ग़ुलामों के शरीर का पानी सूखता चला जाता था और अगर दूसरी चीज़ें उनकी जान नहीं लेती थीं तो इस पानी की कमी से आगे-पीछे उनका गुर्दा खराब हो जाता था और जब गुर्दे का दर्द इतना ज़्यादा बढ़ जाता था कि वे काम नहीं कर सकते थे तो उन्हें खदेड़कर बाहर रेगिस्तान में पहुँचा दिया जाता था ताकि वहीं पर वे मर जायें।

तो ऐसी जगह से आया था स्पार्टकस! वह जानता था कि आदमी का जन्म जीने के लिए होता है और इसलिए वह जीता था। वह ऊपर से देखने में तो भेड़ जैसा था मगर उसके भीतर एक आग थी जिसका आदर अखाड़े का हर ग्लैडिएटर करता था। एक हब्शी ग्लैडिएटर ने एक दिन एक विद्रोह किया – व्यक्तिगत विद्रोह – और मारा गया। अन्य ग्लैडिएटरों को सबक सिखाने के लिए एक दूसरे काले आदमी को बल्लमों से मार दिया गया और तब, जब उनमें से एक, गैनिकस ने कहा कि अगर आदमी को मरना हो तो वह इससे अच्छी तरह से भी मर सकता है, स्पार्टकस को यह एहसास होना शुरू हुआ कि उसे क्या करना चाहिए। या शायद यह कहना बेहतर होगा कि इतने दिनों से जो चेतना उसके अन्दर थी वह कड़ी होकर एक वास्तविकता बन गयी। वह वास्तविकता अभी आरम्भ ही हो रही थी, वह वास्तविकता उसके लिए कभी आरम्भ से अधिक कुछ न होगी, उसका अन्त या अनन्त का विस्तार तो उस भविष्य तक होना था जिसका अभी जन्म नहीं हुआ है, मगर उस वास्तविकता का सम्बन्ध उन सब बातों से था जो उस पर और उसके आस-पास के आदमियों पर गुज़री थीं।

और तब प्रारम्भ हुआ वह भूकम्प, वह विद्रोह जो लगातार चार वर्षों तक रोम की सर्वशक्तिमान सत्ता को कँपकँपाता रहा और जो तात्कालिक तौर पर दबा अवश्य दिया गया लेकिन जिसने तब से लेकर अब तक कभी अभिजात स्वामियों की मदोन्मत्त सत्ता को अपनी शक्तिशाली ठोकरों से चूर किया तो कभी श्रमरक्त की आभा लूटकर दमकते रत्नजटित-मुकुटों को

धूल में मिलाया और यह सिलसिला आज भी जारी है।

रोम ने अपनी पहली सेना भेजी और स्पार्टकस के नेतृत्व में ग़ुलामों ने समूची सेना को काट डाला। एकमात्र जीवित व्यक्ति एक सैनिक था जो ग़ुलामों के सन्देशवाहक के रूप में रोम की सर्वोच्च सीनेट में वापस पहुँचा। और उसी के मुख से सर्वप्रथम रोम के प्रभुओं के सम्मुख स्पार्टकस शब्द का उच्चारण हुआ। उसका सन्देश सुना गया। उस समय से अब तक के युग में होने वाले प्रत्येक संघर्ष में यही सन्देश गूँजता रहा है :

"हम कहते हैं कि दुनिया तुम लोगों से तंग आ चुकी है, तुम्हारी उस सड़ी हुई सीनेट और तुम्हारे इस सड़े हुए रोम से तंग आ चुकी है। दुनिया उस तमाम दौलत और तमाम शान-शौकत से तंग आ चुकी है जो तुमने हमारे ख़ून और हमारी हड्डी से निचोड़ा है। दुनिया कोड़ों का संगीत सुनते-सुनते तंग आ चुकी है।... शुरू में सब लोग बराबर थे और शान्ति से रहते थे और जो कुछ उनके पास था उसे आपस में बाँट लेते थे। मगर अब दो तरह के लोग हैं, एक मालिक और एक ग़ुलाम। मगर हमारी तरह के लोग तुम्हारी तरह के लोगों से ज़्यादा हैं, बहुत ज़्यादा। और हम तुमसे मज़बूत हैं, तुमसे अच्छे हैं, तुमसे नेक हैं। इन्सानियत के पास जो कुछ अच्छा है, वह हमारा है। हम अपनी औरतों की इज़्ज़त करते हैं और संग-संग दुश्मन से लड़ते हैं। मगर तुम अपनी औरतों को वेश्या बना देते हो और हमारी औरतों को मवेशी। हमारे बच्चे जब हमसे छिनते हैं तो हम रोते हैं और हम अपने बच्चों को पेड़ों के बीच छिपा देते हैं ताकि हम उन्हें कुछ और दिन अपने पास रख सकें, मगर तुम तो बच्चों को उसी तरह पैदा करते हो जिस तरह मवेशी पैदा किये जाते हैं। तुम हमारी औरतों से अपने बच्चे पैदा करते हो और उन्हें ले जाकर सबसे ऊँची बोली बोलने वाले के हाथ ग़ुलामों के हाट में बेच देते हो। तुम आदमियों को कुत्तों में बदल देते हो और उन्हें अखाड़े में भेजते हो ताकि वे तुम्हारी तफ़रीह के लिए एक दूसरे के टुकड़े-टुकड़े कर डालें। तुम्हारी वे श्रेष्ठ रोमन महिलाएँ हमको एक दूसरे की हत्या करते देखती हैं और अपनी गोद के कुत्तों को प्यार से सहलाती जाती हैं और उन्हें एक से एक नफ़ीस चीज़ें खाने को देती हैं। कितने ज़लील हो तुम और ज़िन्दगी को तुमने कितना गन्दा बना दिया है। इन्सान जो भी सपने देखता है उन सबका तुम माख़ौल उड़ाते हो। इन्सान के हाथ की मशक़्क़त का और उसके माथे से गिरे हुए पसीने की बूँद का। तुम्हारे अपने नागरिक सरकार के दिये हुए टुकड़ों पर जीते हैं और अपना दिन सरकस और अखाड़े में गुज़ारते हैं। तुमने इन्सान की ज़िन्दगी को एक मज़ाक बना दिया है और उसकी सारी ख़ूबसूरती लूट ली है। तुम मारने के लिए मारते हो और ख़ून को बहता देख कर तुम्हारी तफ़रीह होती है। तुम नन्हें-नन्हें बच्चों को अपनी खानों में रखते हो और उनसे इतना काम लेते हो कि वे कुछ ही महीनों में मर जाते हैं। और यह जो सारी दौलत तुमने इकट्ठा की है वह सारी दुनिया की चोरी करके। मगर अब ये चीज़ नहीं चल सकती।... अपनी सीनेट से जाकर कहो कि अपनी फौजें हमारे ख़िलाफ़ भेजें और हम उन फौजों को भी उसी तरह काटकर गिरा देंगे जैसे कि हमने इस फौज को काटकर गिराया है और तुम्हारी फ़ौजों के हथियारों से हम अपने आपको लैस करेंगे। सारी दुनिया इस आवाज़ को सुनेगी – और हम सारी दुनिया के ग़ुलामों से चिल्लाकर कहेंगे, उठो और अपनी ज़ंजीर तोड़ दो।... और फिर एक रोज़ हम तुम्हारी अमरावती पर धावा बोलेंगे, तुम्हारी अमर नगरी रोम पर और तब वह अमर न रह जायेगी।... और फिर हम रोम की दीवारें गिरा देंगे। और तब हम उस इमारत में आयेंगे जहाँ तुम्हारी सीनेट बैठती है और हम उनकी उन ऊँची-ऊँची शानदार सीटों पर से उनको घसीटकर बाहर निकालेंगे और उनके चोगे चीर देंगे ताकि वे नंगे खड़े हो जायें, और उस हालत में, उसी नंगी हालत में उनके ऊपर फ़ैसला किया जा सके, उसी तरह जैसा सदा हमारे संग किया गया है। मगर हम उनके साथ पूरा-पूरा न्याय करेंगे और न्याय से जो कुछ उनका प्राप्य होगा वह उनको देंगे।... तब हम आज से अधिक सुन्दर नगर बसायेंगे, साफ-सुथरे ख़ूबसूरत नगर जिनके चारों ओर दीवारें न होंगी, जहाँ मानवता शान्ति से और सुख से रह सकेगी।"

और सेनाएँ भेजी गयीं। पाँच बार महान रोम की महान सेनाएँ इस ग़ुलाम विद्रोह को कुचलने गयीं। लेकिन सब खेत रहीं। इन ग़ुलामों जैसे आदमियों से कौन कभी लड़ा होगा। मगर तब तक क्रिक्सस के नेतृत्व में बीस हज़ार ग़ुलाम योद्धा मारे जा चुके थे। अन्ततः लिसिनियस क्रैसस के नेतृत्व में रोमन फौजों ने स्पार्टकस के साथियों को पराजित कर दिया। जो ग़ुलाम क़ैदी बनाये गये उनको बाद में सलीबों पर टाँग दिया गया। स्पार्टकस की वह ख़ूबसूरत साथिन वारिनिया, जो उस समय गर्भवती थी, बच निकलती है और क्रैसस और ग्रैकस जैसे प्रभावी लोगों के हाथ पहुँचती हुई अन्त में दूर आल्प्स की पहाड़ियों के निकट एक गाँव में एक किसान के साथ रहने लगती है। वहाँ उसका पुत्र, जिसका नाम उसने स्पार्टकस रखा है, जन्म लेता है।

समय गुज़रता है, शोषण के अनिवार्य परिणामस्वरूप एक बार फिर विद्रोह उठ खड़े होते हैं। कथाएँ लोक कथाएँ बन जाती हैं और लोककथाओं ने प्रतीकों का रूप ले लिया मगर उत्पीड़कों के विरुद्ध उत्पीड़ितों का युद्ध-बराबर चलता रहा। यह एक ऐसी लौ थी जो कभी तेज़ जलती और कभी मद्धिम मगर बुझी कभी नहीं – और स्पार्टकस का नाम मरा नहीं। यह, रक्त की परम्परा नहीं, मिले-जुले संघर्ष की परम्परा थी।

समूचे उपन्यास में पात्र अपनी

(पेज 12 पर जारी)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

बिटकॉइन और क्रिप्टोकरेंसी: संकटग्रस्त पूँजीवाद के भीतर लोभ-लालच, सट्टेबाज़ी और अपराध को बढ़ावा देने के नये औज़ार

– आनन्द

हाल के वर्षों में भारत सहित दुनिया के कई हिस्सों में खाते-पीते लोगों के बीच बिटकॉइन और अन्य क्रिप्टोकरेंसी में निवेश करके पैसे से पैसा बनाने की एक नयी सनक पैदा हुई है। इस सनक को बढ़ावा देने का काम इण्टरनेट, सोशल मीडिया और मुख्यधारा की मीडिया पर प्रसारित होने वाले विज्ञापनों ने किया है जिनमें लोगों को बिना मेहनत किये रातों-रात अमीर बन जाने के सब्ज़बाग़ दिखाये जाते हैं। इन विज्ञापनों में लोगों को बताया जाता है कि क्रिप्टोकरेंसी में निवेश करके वे बैंक और शेयर बाज़ार में किये गये निवेश के मुक़ाबले कई गुना ज़्यादा पैसा बना सकते हैं। ऐसे में ताज्जुब की बात नहीं है कि हाल के वर्षों में दुनिया के तमाम देशों की ही तरह भारत के खाते-पीते लोगों ने इस देश के मज़दूरों के निर्मम शोषण से जमा की गयी पूँजी को क्रिप्टोकरेंसी में जमकर निवेश किया है। इस प्रक्रिया में कुछ लोगों ने ख़ूब पैसे कमाये भी हैं जिसकी वजह से अन्य लोगों को यह उम्मीद रहती है कि उनके भी वारे-न्यारे हो जायेंगे। लेकिन बहुतेरे इस जुए में बर्बाद भी हुए हैं। साथ ही हमेशा की तरह इस निवेश में धोखाधड़ी और घोटाले भी आने शुरू हो गये हैं। पूँजीवाद की उम्र बढ़ाने के लिए समर्पित तमाम आर्थिक विशेषज्ञ लम्बे समय से क्रिप्टोकरेंसी में अनियंत्रित निवेश और सट्टेबाज़ी के ख़तरों को लेकर सरकार को आगाह करते आये हैं। आरबीआई ने 2018 में क्रिप्टोकरेंसी पर पाबन्दी भी लगायी थी, लेकिन मार्च 2020 में उच्चतम न्यायालय ने इस पाबन्दी को असंवैधानिक क़रार दिया था जिसके बाद क्रिप्टोकरेंसी में निवेश में ज़बर्दस्त उछाल देखने में आया। एक अनुमान के मुताबिक़ अब तक 10 करोड़ से भी ज़्यादा भारतीयों ने क्रिप्टोकरेंसी में 75 हज़ार करोड़ रुपये का निवेश किया है। इस वजह से क्रिप्टोकरेंसी का बुलबुला फूलता जा रहा है, लेकिन यह कोई भीषण संकट का रूप ले इससे पहले भारत सरकार क्रिप्टोकरेंसी में होने वाले निवेश को प्रतिबन्धित या विनियमित करने के लिए नया क़ानून बनाने जा रही है।

क्रिप्टोकरेंसी है क्या और यह काम कैसे करती है?

क्रिप्टोकरेंसी एक प्रकार की डिजिटल मुद्रा (करेंसी) है जिसे क्रिप्टोग्राफ़ी की तकनीक के ज़रिए सुरक्षित बनाया जाता है। हम आगे देखेंगे कि आजकल क्रिप्टोकरेंसी का इस्तेमाल मुद्रा के रूप में कम और सट्टेबाज़ी व निवेश के रूप में ज़्यादा हो रहा है और इसे सही मायने में मुद्रा नहीं कहा जा सकता है। बिटकॉइन क्रिप्टोकरेंसी का एक उदाहरण है। इण्टरनेट पर बिटकॉइन के अलावा दुनिया में इस समय 6000 से भी अधिक क्रिप्टोकरेंसी उपलब्ध हैं, मसलन इथीरियम, लाइटकॉइन, रिपल और मोनेरो आदि। बिटकॉइन की खोज 2008 में सातोशी नाकामोतो छद्म नाम के एक रहस्यमयी व्यक्ति (या व्यक्तियों के एक समूह) ने की थी जिसकी पहचान अब तक उजागर नहीं हुई है। बिटकॉइन व अन्य क्रिप्टोकरेंसी की विशेषता यह है कि यह दुनिया के किसी भी देश, बैंक या किसी भी संस्था द्वारा विनियमित नहीं होती। इस प्रकार यह एक विकेन्द्रीकृत मुद्रा है जो किसी केन्द्रीय संस्था या बैंक द्वारा नहीं बल्कि ब्लॉकचेन नामक तकनीक की बदौलत कम्प्यूटर नेटवर्क के ज़रिए संचालित होती है।

आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रा का लेन-देन प्राय: बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थाओं के ज़रिए होता है जिसमें बैंक व वित्तीय संस्थाएँ अपने सभी खाताधारकों के बही-खातों का प्रबन्धन करते हैं। चूँकि ये संस्थाएँ सरकार द्वारा विनियमित की जाती हैं इसलिए इनके ज़रिए मुद्रा का लेन-देन करने की इस प्रणाली में लोगों का भरोसा बना रहता है। लेकिन अगर कोई ऐसी तकनीक विकसित हो जो लोगों के बीच होने वाले लेन-देन से सम्बन्धित बही-खातों का स्वत: ही पारदर्शी ढंग से प्रबन्धन करती हो तो इस काम के लिए किसी बैंक या वित्तीय संस्था की ज़रूरत ही नहीं होगी। ब्लॉकचेन ऐसी ही एक तकनीक है जिसके ज़रिए क्रिप्टोकरेंसी का लेन-देन भरोसेमन्द तरीक़े से किया जा सकता है। इस प्रकार बिना किसी सांस्थानिक (यानी सरकार या राज्यसत्ता द्वारा) हस्तक्षेप के ज़रिए लेन-देन किये जा सकते हैं और इसमें समय व धन दोनों की बचत भी होती है। इस तकनीक में बही-खाते किसी केन्द्रीय संस्था के पास नहीं रहते बल्कि इस नये माध्यम से मुद्रा का लेन-देन करने वाले सभी लोगों के पास डिजिटल रूप में उपलब्ध होते हैं। इस क़िस्म का ऑनलाइन लेनदेन करने वाले सभी लोग इण्टरनेट के माध्यम से एक विशेष प्रकार के कम्प्यूटर नेटवर्क (पियर-टू-पियर या डिस्ट्रीब्यूटेड नेटवर्क) से जुड़े होते हैं जिसमें डेटा किसी एक सर्वर पर नहीं बल्कि नेटवर्क के सभी कम्प्यूटरों पर मौजूद होता हैं। इस प्रक्रिया से होने वाले लेन-देन को सुरक्षित बनाने के लिए 'डिजिटल सिग्नेचर' और क्रिप्टोग्राफ़ी की तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है। ऐसे लेन-देनों के सत्यापन की प्रक्रिया 'बिटकॉइन माइनिंग' का अंग है जो जटिल गणितीय समीकरणों को हल करने की कुशलता की माँग करती है। इस कुशलता से लैस विशेषज्ञों को 'बिटकॉइन माइनर्स' कहते हैं। बिटकॉइन नेटवर्क में जब भी कोई लेन-देन होता है तो नेटवर्क में उपस्थित सभी 'माइनर्स' को अधिसूचना भेजी जाती है। जो 'माइनर' लेन-देन का सत्यापन सबसे पहले करता है उसके खाते में एक निश्चित मात्रा में बिटकॉइन चले जाते हैं। इस प्रकार 'माइनर्स' न सिर्फ़ बिटकॉइन का सत्यापन करते हैं, बल्कि वे उनका निर्माण भी करते हैं। बिटकॉइन नेटवर्क में होने वाले कई लेन-देनों को मिलाकर एक ब्लॉक बनता है। ये ब्लॉक एक-दूसरे से जुड़े होते हैं, इसी वजह से इस तकनीक को ब्लॉकचेन कहते हैं। हर ब्लॉक पर अपने पिछले ब्लॉक की पहचान दर्ज होती है और इस प्रकार सभी ब्लॉक एक श्रृंखला में जुड़े होते हैं। ब्लॉकचेन की इस तकनीक को हैक करना इसलिए मुश्किल है क्योंकि हैकर को सिर्फ़ एक ब्लॉक में नहीं बल्कि बिटकॉइन की शुरुआत से लेकर अबतक के सभी ब्लॉकों में छेड़छाड़ करनी होगी जोकि लगभग असम्भव है।

आज क्रिप्टोकरेंसी का इस्तेमाल किस रूप में हो रहा है?

क्रिप्टोकरेंसी की शुरुआत 2007-8 के वैश्विक वित्तीय संकट के बाद हुई थी और इसे भविष्य की विश्वव्यापी मुद्रा के रूप में प्रचारित किया जाता रहा है। अराजकतावादी और 'लिबर्टेरियन' (स्वच्छन्दतावादी) विचारों से प्रभावित कई लोग इसका समर्थन इसलिए करते हैं क्योंकि यह किसी सरकार या वित्तीय संस्था के नियंत्रण में नहीं है। लेकिन एक दशक से भी ज़्यादा का समय बीतने के बावजूद आज बिटकॉइन जैसी क्रिप्टोकरेंसी का मुद्रा के रूप में बेहद सीमित इस्तेमाल ही हो रहा है और ज़्यादातर इसका इस्तेमाल सट्टेबाज़ी या निवेश के एक माध्यम के रूप में हो रहा है। पूँजीवाद के दायरे में क्रिप्टोकरेंसी जैसी चीज़ कभी भी अन्य मुद्राओं की जगह ले पायेगी यह मुमकिन नहीं लगता। ऐसा इसलिए क्योंकि केवल ऐसी ही चीज़ मुद्रा के रूप में काम कर सकती है जो एक ऐसे सार्वभौमिक समतुल्य का काम कर सके जिसके सापेक्ष अन्य मालों के मूल्य (सामाजिक रूप से आवश्यक श्रमकाल) को मापा जा सके और जो साथ ही साथ विनिमय के माध्यम का भी काम कर सके यानी जिसके ज़रिए चीज़ों को ख़रीदा-बेचा जा सके। ग़ौरतलब है कि बिटकॉइन जैसी क्रिप्टोकरेंसी के मूल्य का किसी देश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य से कोई रिश्ता नहीं होता है, बल्कि इसका मूल्य इसपर हो रही अटकलबाज़ी के आधार पर बहुत ही तेज़ी से कम या ज़्यादा होता रहता है। इसके मूल्य की यह अस्थिरता अपने आप में इसे मुद्रा के रूप में स्वीकार होने की राह में बहुत बड़ी बाधा है। इसके अलावा क्रिप्टोकरेंसी का इस्तेमाल करके बाज़ार में आम तौर पर चीज़ों को ख़रीदा या बेचा नहीं जा सकता है। इण्टरनेट पर कुछ कम्पनियों ने कुछ उत्पादों व सेवाओं को बिटकॉइन से ख़रीदा जा सकता है, लेकिन ये बेहद सीमित है।

पारम्परिक रूप से धातुएँ, ख़ासकर सोना और चाँदी, ऐसे सार्वभौमिक समतुल्य और विनिमय के माध्यम का काम करती थीं। यह बात सच है कि आधुनिक दौर में काग़ज़ के नोट और प्लास्टिक व कुछ इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने भी मुद्रा का स्थान ग्रहण किया है जिनका स्वयं का मूल्य किसी सुनिश्चित मात्रा में धातु के मूल्य के बराबर हो ऐसा आवश्यक नहीं है। लेकिन ग़ौरतलब बात यह है कि ऐसा इसलिए मुमकिन हो पाता है कि देशों की सरकारें इसकी गारण्टी देती हैं और सरकारों की यह क्षमता उनकी अर्थव्यवस्था की स्थिति से निर्धारित होती है। लेकिन बिटकॉइन जैसी क्रिप्टोकरेंसी सरकारों के नियंत्रण से मुक्त हैं, इसलिए लोगों के बीच मुद्रा के रूप में इनपर भरोसा क़ायम होना बहुत मुश्किल है। इसके अतिरिक्त इसकी एक सीमा यह भी है कि इण्टरनेट का इस्तेमाल न करने वाले दुनिया के अरबों लोगों के लिए इसके कोई मायने नहीं हैं।

मुद्रा के रूप में भले ही बिटकॉइन जैसी क्रिप्टोकरेंसी भले ही स्थापित न हो पायी हो, लेकिन इसके बावजूद दुनियाभर में उनपर निवेश लगातार बढ़ता जा रहा है। उनके मूल्य को लेकर लगायी जा रही अटकलों की वजह से दुनियाभर में क्रिप्टोकरेंसी पर आधारित सट्टेबाज़ी का विशाल विश्वव्यापी बाज़ार निर्मित हुआ है। क्रिप्टोकरेंसी पर ट्रेडिंग करने में मदद करने वाले ढेरों प्लेटफ़ॉर्म विकसित हुए हैं जिन्हें क्रिप्टो-एक्सचेंज कहा जाता है। वास्तविक अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की गिरती दर के संकट की वजह से पूँजी को लाभप्रद निवेश के अवसर कम होते जा रहे हैं जिसका नतीजा यह हो रहा है कि पूँजी अधिक मुनाफ़े की चाहत में सट्टाबाज़ार की ओर रुख़ कर रही है क्योंकि वहाँ मुनाफ़ा कमाने के अवसर दिखते हैं। तमाम निवेशकों को क्रिप्टोकरेंसी के निवेश में शेयर बाज़ार की सट्टेबाज़ी से भी ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की सम्भावना दिखती है। यह बात दीगर है कि इसमें जोखिम भी ज़्यादा होता है क्योंकि भविष्य में क्रिप्टोकरेंसी के मूल्य बढ़ने की अटकल पर आधारित सट्टेबाज़ी से एक बुलबुला फूलता जाता है जिसे देर-सबेर फूटना ही होता है, जिसके बाद कई निवेशक

(पेज 4 पर जारी)

शान्तिकाल में पूँजी के हाथों हुआ सबसे बड़ा हत्याकाण्ड

हम इसे कभी नहीं भूलेंगे कभी माफ़ नहीं करेंगे!

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006